मार्च 2022
रंग संवाद
रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र
तथा वनमाली सृजन पीठ की संवाद पत्रिका
मधुमास में महक उठे
लय-ताल के छंद

रबिन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल

शिक्षा तथा संस्कृति की परस्परता का रचनात्मक उपक्रम

अवधारणा, परिदृश्य और उद्देश्य

नई छात्र पीढ़ी में विज्ञान और तकनीकी शिक्षा के साथ संस्कृति, कला तथा साहित्य के प्रति जिज्ञासा, अभिरूचि, सृजन और संस्कारशील व्यक्तित्व गढ़ने के उद्देश्य से रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वकला एवं संस्कृति केन्द्र की स्थापना की गई है।

अपनी सक्रियता के चलते इस केन्द्र ने अध्ययन, शोध और प्रदर्शनकारी गतिविधियों के माध्यम से विश्वविद्यालय में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं तथा विभिन्न विधाओं के अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त सर्जकों और विशेषज्ञों के बीच नवोन्मेषी रचनात्मक परिवेश तैयार किया है।

यह केन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल, डॉ. सी. वी. रामन विश्वविद्यालय, बिलासपुर, खंडवा और पटना तथा आईसेक्ट विश्वविद्यालय हजारीबाग में समान रूप से संचालित है। भोपाल इसकी केन्द्रीय इकाई है।

विभिन्न ललित कलाओं, संस्कृति और साहित्य के विभिन्न पक्षों को अपनी गतिविधियों के दायरे में रखते हुए यह केन्द्र आंचलिक प्रस्तुतियों के अलावा शोध, विमर्श, संवाद, सृजन-शिविर, कार्यशालाओं, पुस्तक लोकार्पण, व्याख्यान, संपादन, अनुवाद और दस्तावेज़ीकरण की दिशाओं में सक्रिय है।

स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्व के अनेक आयोजनों ने सकारात्मक परिवेश तैयार किया है। इस केन्द्र की सक्रियता को साहित्य, ललित कलाओं और रंगमंच की श्रेणियों में देखा जा सकता है।

अपनी प्रवृत्तियों और उद्देश्यों के साथ टैगोर विश्वकला एवं संस्कृति केन्द्र बहुलता की संस्कृति का आदर करते हुए सौहार्द और समन्वय की पुनर्स्थापना के लिए कृत संकल्प है।

संपर्क

भोपाल-चिकलोद रोड, बंगरसिया चौराहे के पास, भोपाल, फोन : 0755-2700400, 2700404, मो. 9826392428

ई-मेल : tagorekala9@gmail.com, vinay.srujan@gmail.com

रंग संवाद

फेडरेशन ऑफ इंडियन पब्लिशर्स द्वारा श्रेष्ठ प्रकाशन पुरस्कार से सम्मानित

मार्च– 2022

**टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र तथा
वनमाली सृजन पीठ, रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय की
संवाद पत्रिका**

प्रधान संपादक

संतोष चौबे
choubey@aisect.org

संपादक

विनय उपाध्याय
vinay.srujan@gmail.com

शब्दांकन : **अमीन उद्दीन शेख़**

संपादकीय संपर्क:
टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र, ऋतुरंग प्रकोष्ठ
रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्व विद्यालय
ग्राम मेंदुआ, पोस्ट–भोजपुर, बंगरसिया चौराहा के पास,
भोपाल–चिकलोद रोड, रायसेन–464993
मोबाइल : 9826392428

• • •

**टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र तथा
वनमाली सृजन पीठ (रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय), भोपाल द्वारा प्रकाशित**
ई–मेल : **tagorekalabpl@gmail.com**
मुद्रक : आईसेक्ट पब्लिकेशन, सी–10, इंडस्ट्रियल एरिया, बगरोदा (भोपाल)

इस बार

देवीलाल पाटीदार

सृजन के आसपास
सांस्कृतिक गतिविधियाँ

आवरण चित्र: तनवीर फ़ारुखी **आवरण आकल्पन :** वंदना श्रीवास्तव

भीतर का आकल्पन : विनय उपाध्याय, अमीन उद्दीन शेख **छायाचित्र :** उपेन्द्र पटने, प्रवीण दीक्षित, राज, आदित्य उपाध्याय

सहयोग : समीर चौधरी, रोहित श्रीवास्तव, सीरिल, मुदित श्रीवास्तव

देखने-सुनने की समझ

> 'लोग अक्सर मुझसे मेरे चित्रों के अर्थ पूछते हैं. मैं अपने चित्रों की तरह ही मौन रहता हूँ. उनका काम अभिव्यक्त करना है, स्पष्टीकरण देना नहीं. अपने खुद के रुपाकार के अलावा उनकी कोई पृष्ठभूमि नहीं है जिसे शब्दों के माध्यम से खोजा जाये. उनका होना ही उनका अंतिम सत्य है. अन्यथा उन्हें अस्वीकार किया जा सकता है, भले ही उनमें कुछ वैज्ञानिक सत्य या नैतिक औचित्य प्रतीत होता हो.'
>
> – रबींद्रनाथ टैगोर

संपादकीय

'रंग संवाद' के इस अंक का प्रमुख आलेख है प्रख्यात बांग्ला लेखक शंख घोष का 'देखना' यानी देखने की प्रक्रिया का आंतरिक 'दृष्टि' में बदलना. इस क्रम में टैगोर का चित्रकला के संदर्भ में उपरोक्त उद्धरण बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है.

रवि बाबू चित्रकला से अपने जीवन के अंतिम दशक में जुड़े और उन्होंने एक स्थान पर लिखा कि अब मैं चित्रकला से इस कदर जुड़ गया हूँ कि प्राय: यह भूल जाता हूँ कि मैं कभी कविता भी लिखा करता था. उनके लिये चित्रकला में पदार्पण शब्दों की दुनिया के कोलाहल से दूर एक ख़ामोश कला में खो जाने का सफर था. उन्हें चित्रकला, 'जीवन संध्या की प्रेयसी' जैसी प्रतीत होती थी. उन्होंने 1938 में विलियम रोटेन्सटाइन को लिखे पत्र में कहा, 'यह चित्रकला मेरे मन की नियमित क्रीड़ा साथी बन मुझे साहित्यिक वाचालता या मुखरता से ज़रुरी विकर्षण प्रदान कर रही है. यह मानो एक सपना है...'.

भीम बेटका जैसे पत्थरों पर उकेरे प्रकृति और जीवन के चित्र भारतीय चित्रकला के आदि स्थान माने जाते हैं. भित्ति चित्रों से आगे बढ़ते हुये कला ने लोक में अपनी जगह बनाई एवं तीज-त्यौहारों पर, ऋतुओं और मौसमों पर, प्रकृति और मानव जीवन पर बनाये चित्रों ने भारतीय मानस में गहरी पैठ बना ली. आदिवासी समाजों में चित्रकला की एक अलग परंपरा विकसित हुई जिसमें प्रकृति, जानवर और देवता अद्भुत ढंग से प्रगट होते हैं और मनुष्य के अवचेतन को कई स्तरों पर छूते हैं. वहाँ लोक कथाओं को भी चित्रकला में प्रस्तुत किया जाता है वैसे ही जैसे भारत के अनेक मंदिरों में राम और कृष्ण पर केंद्रित कथाएँ तथा भारतीय पौराणिक कथाएँ अत्यंत भव्यता के साथ चित्रित की गई हैं. आगे चलकर चित्रकला में,

विशेषकर नागर कलाओं में, एक समग्र जीवन दृष्टि विकसित हुई. राग माला पेंटिंग इसका अद्भुत उदाहरण हैं.

रागमाला या रागों की माला लघुचित्रों का ऐसा संग्रह है जो रागों के मूड या उनके भाव को चित्रित करता है. राग प्रकृति और प्रहर के अनुसार ईश्वर की प्रार्थना से निबद्ध थी. रागों के भाव को एक कविता से भी दर्शाया जाता था जो अक्सर रागमाला चित्र के ऊपर लिखी होती थी. अक्सर कवि अपनी कविता पर यह भी लिखते थे कि इसे किस राग में गाया जाना है. इस तरह कविता, संगीत और चित्रकला का अद्भुत समन्वय रागमाला पेंटिंग में देखने मिलता है. कविता राग और चित्र में छुपे रस का अवगाहन करती थी. अगर राग का काम श्रोता के मन में एक निश्चित रस का प्रवाह कर निश्चित भाव पैदा करना था, तो उस भाव को चित्रित भी किया जा सकता था. इस तरह चित्रकला मुझे संगीत के अधिक निकट जान पड़ती है. रागमाला पेंटिंग देखने और सुनने की समझ के बीच अद्भुत समन्वय स्थापित करती हैं.

लंबे समय से चली आ रही भारतीय कला की अवधारणा को रबींद्रनाथ ठाकुर और उनके साथ-साथ अमृता शेरगिल ने बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में नई ज़मीन प्रदान की. उन्होंने चित्रकला को कथाओं और संदर्भों से मुक्त किया और भारतीय चित्रकला को देवताओं और राजपुरुषों से मुक्त कर आमजन के लिये जगह बनाई. इस दौर में जहाँ राजा रवि वर्मा के चित्रों में हम 'भारतीय परंपरा' को विकसित होते हुये देखते हैं वहीं चित्रकला के 'नव बंगाल स्कूल' में भी 'भारतीयता' का ही बोलबाला पाते हैं. लेकिन रबींद्रनाथ ठाकुर चित्रकला को मनुष्य की एक ऐसी अभिनव अभिव्यक्ति के रूप में पहचानने की कोशिश करते हैं जहाँ उसे किसी प्रांत, प्रदेश या देश के दायरे में बांधा नहीं जा सकता. रबींद्रनाथ ठाकुर चित्रकला में मानवतावाद को स्थापित करते हैं.

आधुनिक भारतीय चित्रकला की शुरुआत 20वीं सदी के प्रारम्भिक दशकों से मानी जा सकती है. जब भारत एक ओर तो अपनी परंपरा और भारतीयता की भावना का आकलन कर रहा था और दूसरी ओर क्रांति की भावना भी जोर पकड़ रही थी. इसका प्रभाव कलाओं पर भी पड़ा, एक दल प्राचीन कला के पुनुर्रुत्थान के पक्ष में सामने आया तो दूसरा दल पश्चिमी कला का समर्थन करने लगा. भारत की स्थापित चित्रकला शैली के विकास में 'बंगाल स्कूल' का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि भारतीय आधुनिक चित्रकला के जन्म का इतिहास बंगाल स्कूल की स्थापना से आरम्भ होता है. यह वह आधार भूमि है जहाँ एक बार फिर से परम्परागत चित्रकला के बीज बोए गये. राष्ट्रवादी भावना से परिपूर्ण भारतीय चित्रकला ने चित्रकला को पश्चिम से विमुख करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और अपनी इन्हीं विशेषताओं के चलते उसे पुनर्जागरण' के नाम से संबोधित किया गया.

बंगाल स्कूल का अपना ऐतिहासिक महत्व है लेकिन बाद के अनेक महत्वपूर्ण कलाकारों ने इस स्कूल को अपना प्रेरणा स्रोत मानने से लगभग इंकार कर दिया. जब परम्परा का मतलब अतीत में झांकना और आधुनिकता का अभिप्राय पश्चिम की ओर देखना समझा जा रहा हो तब रबीन्द्रनाथ टैगोर और अमृता शेरगिल जैसे सर्जकों ने इस धारणा से हटकर एक बिल्कुल नई परिभाषा गढ़ी। इन कलाकारों का मानना था कि कला पूर्ण रुप से स्वतंत्र होती है, उसकी ना कोई जात होती है न ही धर्म, वह सम्पूर्ण मानव जाति के लिये है और वह अपने नानारुपों में इस धरा पर अमिट छाप छोड़ते हुए जन-जन को तृप्त करती रही है। उनकी चित्रकला भी मुक्ति के इस राग को गाती प्रतीत होती है।

भारत की आज़ादी के बाद प्रगतिशील चेतना के चलते प्रगतिशील आर्टिस्ट ग्रुप का गठन हुआ जिसमें प्रारंभ में ये छः कलाकार– फ्रांसिस न्यूटन सूज़ा, सैयद हैदर रज़ा, मकबूल फ़िदा हुसैन, कृष्णजी हौवाल जी आरा, हरिअम्बादास गादे और सदानंद बाकरे शामिल थे. बाद में इसमें कुछ और नाम भी जुड़े. मनीषी डे, राम कुमार, तैयब मेहता पहले चरण में और कृष्ण खन्ना, मोहन सामंत और व्ही.एस. गायतोण्डे दूसरे चरण में इस ग्रुप में शामिल हुए. अकबर पदमसी का रिश्ता भी अनौपचारिक रुप से इसी ग्रुप के साथ रहा. भारतीय चित्रकार अब एक वैश्विक चेतना के साथ जुड़ रहे थे और विश्व के कला केन्द्र 'पेरिस स्कूल' का प्रभाव भारत तक पहुंचना ही था. इसी के फलस्वरुप सत्तर के दशक में 'ग्रुप 1890' अस्तित्व में आया जिसका नाम गुजरात के भावनगर के एक मकान के नम्बर पर रखा गया था. इस ग्रुप में जे. स्वामीनाथन के अलावा जैराम भट्ट, ज्योति भट्ट, अम्बादास खोबरा गडे, हिम्मत शाह, राघव कनेरिया, गुलाम मोहम्मद शेख, बालकृष्ण पटेल, एम.जी. निकम, रैडुप्पा नायडू, एरिक बोवेन और राजेश मेहरा थे. अपनी प्रारंभिक सक्रियता के बावजूद यह ग्रुप बहुत दिनों तक जीवित नहीं रह पाया. जे. स्वामीनाथन के अनुसार ग्रुप 1890 का एक बेहद उल्लेखनीय योगदान यह रहा कि उसने आकृति और कल्पना, चित्रण और गैरचित्रण के बीच का मिथ्या विवाद हमेशा के लिये खत्म कर दिया. यह एक तरह से देखने की समझ में क्रांतिकारी परिवर्तन था.

आज तो विधाओं के बीच की आवाजाही और अधिक बढ़ी है. यह एक ऐसी आध्यात्मिक समझ का पैदा होना है जो मनुष्य की, प्रकृति और ब्रह्मांड से बुनियादी एकता को स्थापित करती है और कलाओं को ऊंचाई तथा गहराई प्रदान करती है. उदाहरण के लिये कवि–चिकित्सक विनय कुमार के, एक चित्र की प्रतिक्रिया में लिखे इस कवितांश को देखिये. चित्र रबीन्द्रनाथ ठाकुर का भी हो सकता है और किसी यूरोपियन चित्रकार का भी :

फलक पे सूरज उभर रहा है

नदी में लाली उतर रही है

अभी उजाले समा के बाहर

अभी अँधेरा गया नहीं है

ज़हन के काग़ज़ पे रंग हलके

बिखर रहे हैं सँवर रहे हैं

सबीहें बनने लगी हैं देखो

खड़ी है कश्ती खड़े हैं माँझी

खड़े हैं तट पे दरख़्त गुमसुम

पड़े हैं ख़ाली सभी नशेमन

सभी परिंदे निकल चुके हैं

ख्यात कला समीक्षक 'जॉन बर्गर' ने अपनी किताब 'देखने के तरीके' में लिखा है, 'देखना, शब्दों के पहले आता है. बच्चा पहले देखता है और पहचानता है, फिर बोलता है', 'देखना' तमाम रचनात्मक प्रक्रिया के मूल में है.

'रंग संवाद' के इस अंक में शंख घोष के उक्त महत्वपूर्ण आलेख के अलावा मध्यप्रदेश के प्रतिष्ठित शिखर सम्मानों से विभूषित कलाकारों मूर्तिकार देवीलाल पाटीदार, रंगकर्मी के.जी. त्रिवेदी, जनजातीय और दुर्गा बाई व्याम और लोक कलाकार रामसहाय पांडे के योगदान पर प्रकाश डाला गया है, स्मृति शेष भारत रत्न लता मंगेशकर की याद की गई है और ऋतु बसंत की कीर्ति बिखेरी गई है.

सदा की तरह विचार और कलात्मक प्रेरणा से समृद्ध यह अंक आशा है आपको पसंद आयेगा. हमें अपने विचार ज़रुर लिखें.

शुभकामनाओं सहित,

14 मार्च 2022

संतोष चौबे
प्रधान संपादक

रागमाला.... वसंत

निराला, वसंत और नया स्वर

विनय उपाध्याय

भाषा-भारती... पाठ-एक... वर दे! कवि-सूर्यकांत त्रिपाठी निराला। यही तो था मंगलाचरण। क़िताब का पहला शब्द-पुष्प। पाँखुरी-पाँखुरी खिलता जैसे पूरे मानस को महक से भर देता। गुरुजी विस्तार से इस कविता का अर्थ समझाते और अबोध मन वाग्देवी के चित्र को कौतुहल से निहारता! भीतर कोई लौ जागती। एक भरोसा किसी कोने में जगह बनाता कि तमाम दुश्वारियों के बावजूद कोई शक्ति है जो समाधान की रौशनी लिए हमारे कर्मपथ पर फैले काँटे बुहारकर राह आसान बनाती रहेगी।

कलुष भेद तम, हर प्रकाश भर, जगमग जग कर दे... हताश और हारे हुए जीवन में उम्मीद के उजियारे की पवित्र कामनाओं को जगाता यह छंद यक़ीनन बुजुर्ग और प्रौढ़ हो चली पीढ़ी की स्मृतियों में अब भी किसी मंत्र की तरह झंकृत होता होगा। इसे बाँचते-सुनते ही अनायास पूरी कविता कौंध रही होगी। याददाश्त में लहराती धुनों के सहारे उनका कंठ गा रहा होगा- ''वर दे वीणा वादिनी वर दे। प्रिय स्वतंत्र रव, अमृत मंत्र नव, भारत में भर दे''। अंतरजाल में गाफ़िल आज की नई नस्ल को यह वासंती संदेश बेगाना और कुछ पुरातन-पारंपरिक सा लगे लेकिन साहित्य की अमृत-बूंदों का आचमन कर ज़िंदगी के होश थामने वाली पीढ़ी के लिए शब्द और वाणी की महारानी सरस्वती के प्रति यह निवेदन जीवन की धन्यता का उद्‌घोष है।

आलाप

इस कविता का संदर्भ इसलिए कि वसंत की पंचमी हिन्दी के महाप्राण कवि निराला के इस नश्वर संसार में पैदा होने का मुहूर्त है। निराला ने अपने रचनाशील जीवन में विपुल और विविध लिखा। वे छायावाद के अप्रतिम कृतिकारों जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा और सुमित्रा नंदन पंत के साथ खड़े एक ऐसे विलक्षण कवि रहे जो हिन्दी के आधुनिक परिसर में नई क्रांति के प्रतीक माने जाते हैं। यूँ निराला की साहित्यिक मेधा और उनकी महिमा को कई कोणों से मापा जा सकता है लेकिन उनके पक्ष में सर्वाधिक महत्व की बात यह है कि निराला भारतीय संस्कृति, जीवन मूल्यों, इतिहास, दर्शन और विश्व मानवीय दृष्टि से समृद्ध व्यक्तित्व थे। संघर्ष उनकी कुंडली में स्थायी भाव की तरह था। निराला इसी आँच में तपकर जीवन के गीत गाते रहे। कविता-वर दे... के आसपास रहकर निराला की साहित्य साधना को समझें तो अनेक दिशाएँ खुलती दिखाई देती हैं।

यह कविता निराला ने 1936 में लिखी थी। उनके अत्यंत लोकप्रिय संग्रह 'गीतिका' में संकलित यह प्रथम गीत है। शब्द-प्रयोग और लय-गति के विन्यास को देखें तो निराला नए छंद की रचना का साहस और सामर्थ्य प्रकट करते हैं। वे शब्द की आत्मा में बसे गहरे नाद को, उसके अंत: संगीत को पहचानते हैं। वे श्रृंगार, लालित्य और रस-भाव के शिल्पी हैं। कविता कहते-कहते अनुप्रास (यानि एक ही वर्ण-अक्षर या शब्द का बार-बार प्रयोग) की छटा सहज ही उसमें चली आती है। इन तमाम आग्रहों के साथ जब आप इस कविता के पूरे पाठ से गुजरते हैं तो मंत्र की तरह उसका असर शिराओं में प्रवाहित होता है। सचमुच, निराला ने मंत्र ही तो रचा है-

वर दे!

वीणा वादिनी वर दे!!

प्रिय स्वतंत्र रव, अमृत मंत्र नव

भारत में भर दे

काट अंध उर के बंधन स्वर

बहा जननि ज्योतिर्मय निर्झर

कलुष भेद तम हर प्रकाश भर

जगमग जग कर दे

नवगति, नव लय, ताल छंद नव

नवल कंठ, नव जलद मंद्र रव

नव नभ के नव विहग वृंद को

नव पर नव स्वर दे।

ग़ौर करने की बात यह भी कि निराला ने इसे उस दौर में लिखा जब पराधीन भारत का आंतरिक संघर्ष स्वाधीनता के सपनों के आसपास परवान चढ़ रहा था। तमाम बंधनों से मुक्ति की कामना के लिए भीतर कसक थी। आज़ादी के आसमान पर अपने अरमानों के इन्द्रधनुषी रंग-बिखेरने की हुमस थी। गति, गौरव और गरिमा के गीत गाने को कंठ मचल रहे थे। ऐसे में निराला की कविता वरदान बनकर प्रकट होती है। पूरे देश की आत्मा की आवाज़ बन जाती है। देवी सरस्वती से यही गुहार कि शापित कालखंड को मथकर नये विहान (सुबह) का अभ्युदय हो! निश्चय ही यह कविता नयी गति, नई ताल, नए छंद और नए स्वरों को थामती नये उन्मेष की इबारत बनी। आज भी निराला का यह गीत एक आलोकित दीप शिखा की तरह हमारे अंत:करण के स्याह कोनों को नये उजास से भरता है। शायर-फ़िल्मकार गुलज़ार कहते हैं कि गीत कभी बूढ़े नहीं होते। उनकी झुर्रियाँ नहीं निकलतीं। किसी मौज़ूँ सी धुन में जड़ दो तो नग़मा फिर से साँसे लेने लगता है। इस गीत के साथ भी कमोबेश ऐसा ही है। अनेक संगीतकार-गायकों ने अलहदा सी धुनों में इस रचना को पिरोया। संगीत की सोहबत में जैसे इस कविता को नए पंख मिले। सारस्वत सभाओं से लेकर स्कूलों में होने वाली नियमित प्रार्थना में इसे एकल और सामूहिक गाने की परंपरा हो गयी। शास्त्रीय राग-रागिनियों और लोक धुनों से लेकर सुगम संगीत में ढलकर निराला का यह छंद देश-देशांतर में स्वच्छंद विचरण करने लगा। किसी कृति के कालजयी हो जाने का उदाहरण इससे बेहतर और क्या हो सकता है!

लेकिन इतनी स्वर-सिद्ध कविता रचने का कौशल अगर निराला के पास रहा तो इसकी एक बड़ी वजह शब्द के साथ-साथ संगीत के प्रति उनकी अगाध असक्ति थी। उनकी गीतात्मक कविताओं से लेकर छंद मुक्त रचनाओं में अंत: संगीत बहता हुआ दिखाई देता है। 'वर दे' और 'बादल राग' से लेकर 'वह तोड़ती पत्थर' तक आते-आते निराला नए प्रयोगों की मिसाल गढ़ते हैं लेकिन कविता का आरोह-आरोह और उसका ध्वनि सौन्दर्य कभी कम न हुआ।

दरअसल संगीत उनकी चेतना में प्रकृति प्रदत्त था। हिन्दी के मूर्धन्य आलोचक डा. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'निराला की साहित्य साधना' में निराला के संगीत प्रेम से जुड़े अनेक प्रसंगों की चर्चा की है। एक दिलचस्प वाकया कुछ इस तरह हुआ। पत्नी मनोहरा को एक दिन जब निराला ने तुलसी की 'विनय पत्रिका' का पद ''कंदर्प अगणित अमित छवि नव, नील नीरद सुंदरम्'' गाते हुए सुना तो उन्हें लगा जैसे गले में मृदंग बज

रहा है। संगीत के सोते हुए संस्कार जाग गये। निराला को लगा कि साहित्य इतना सुंदर है और संगीत इतना आकर्षक! उनकी आँखों ने जैसे नया संसार देखा! कानों ने ऐसा संगीत सुना जो इस पृथ्वी पर किसी दूर लोक से आता हो!

तुलसीदास के पद 'श्रीरामचन्द्र कृपालु भजमन' से उन्हें मोह हो गया। एक अज़ीब विश्रांति और आनंद वे इस छंद में महसूस करते। वे हारमोनियम पर इस पद को गाते तो आपे से बाहर आ जाते। आवेश में उनकी माथे की नसें तन जातीं। वे शांत भाव से रामचरिमानस की चौपाइयाँ गाते। उनके स्वर में पिघले हुए सोने का माधुर्य था। 'भैरवी' राग उन्हें अत्यंत प्रिय था। इसी राग में निबद्ध रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविता उन्हें प्रिय थी और किसी के आग्रह पर या अपनी रुचि से वे गाने लगते। निराला अक्सर संगीत के शास्त्रीय पक्ष पर भी बहस करते। अपने कलकत्ता प्रवास के दौरान उनका परिचय रवीन्द्र संगीत से हुआ। टैगोर की संगीत दृष्टि से वे प्रभावित थे। किसी बंदिश को सुनते हुए सम आने पर चुटकी बजाते। यानी लय-ताल का ज्ञान उन्हें था। वे रवीन्द्र संगीत में आयीं कुछ पाश्चात्य धुनों के पक्ष में थे क्योंकि वे टैगोर की विश्व दृष्टि का सम्मान करते थे। निराला के व्यक्तित्व में इन तमाम तत्वों का समावेश था।

यह मुमकिन न होता अगर निराला सरस्वती के उपासक न होते और सरस्वती की अनन्य कृपा उन पर न होती। वर दे... का लिखा जाना इसी परस्परता की परिणति है।

दीपक सुतार

राकेश भटनागर

काने न होते हुए भी अकसर हमें आँखों से दिखाई नहीं देता, हमारा देखना सच्चा-देखना नहीं हो पाता। 'शांतिनिकेतन'-भाषण की 'देखना' रचना में रवींद्रनाथ ने दो पदों का प्रयोग किया था: देखने की कली और विकसित देखना। ''हम लोग आँख खोलते हैं, हम देखते हैं। लेकिन वह देखना देखने की कली भर है, वह अब भी अंधी है।..... विकसित देखना अभी तक संभव नहीं हो सका, भरपूर देखना अभी तक नहीं हो सका।'' तो किस प्रकार वह विकसित या भरपूर देखना संभव हो सकेगा? उस देखने के लिए रवींद्रनाथ ने किसी ध्यान का प्रस्ताव नहीं दिया। उन्होंने कहा है, वह देखना 'तुम्हारे भीतर ही है'।

जब दृष्टि में बदल जाता है देखना

शंख घोष • मूल बंगला से अनुवाद : उत्पल बैनर्जी

चिंतन

ये जो व्यक्ति मेरे सामने से अभी उठकर चले गए, इन्हें मैं बहुत दिनों से देख रहा हूँ। लेकिन क्या सचमुच मैं इन्हें देख रहा हूँ? ये किसी काम के सिलसिले में आते हैं, यह सिलसिला ही हमारा आपसी बंधन है। उस सिलसिले के बाहर, मैंने क्या कभी उनके चेहरे की ओर देखने की भी ज़हमत उठाई? मैंने क्या कभी उन्हीं की जगह से, उन्हीं की जगह पर स्वयं को रखकर, उनकी ओर देखने के विषय में सोचा? और मैं यदि ऐसा नहीं सोचता, तो फिर मेरा उन्हें देखना एक खंडित देखना है, उस व्यक्ति को आंशिक रूप से देखना, यहाँ तक कि, ग़लत ढंग से देखना भी हो सकता है।

दैनंदिन कार्यों की भीड़ में से या कि आदतों की वजह से इस प्रकार ग़लत ढंग से देखने में ही समय चला जाता है। यह ग़लत देखना किसी व्यष्टि में ही अटका नहीं रहता, स्वभावतः वह समष्टि तक ढुलक जाता है। किसी और को या फिर औरों को देखते समय हम उन्हें नितांत अपनी ओर से देखते हैं, अपने ही अनुभवों से, अपने ही स्वार्थ के वृत्त से। उस वृत्त से स्वयं को थोड़ा-सा हटा लेने के लिए जितने-से मानसिक समय की ज़रूरत होती है, हमारे जीवन में उसका बहुत अभाव है। यदि वह समय रहता तो फिर मेरे ही विरुद्ध खड़े होकर जो व्यक्ति बातें करता है, शायद उसे भी समझने की एक ज़मीन हमारे पास होती, मैं समझ पाता कि उन बातों के बाहर भी उस व्यक्ति का बहुत सारा अस्तित्व है, उसकी वही बात आकार ले रही है। देखना यदि विस्तार पा जाए, या फिर देखना अंतर्देश तक पहुँच सके, तब औरों को समझना शायद सहज हो जाता है। सहज हो जाता है सम्मिलन। यह सम्मिलन जितना व्यष्टि के साथ होता है उतना ही समष्टि के साथ भी।

'जीवनस्मृति' में कही गई उस व्यक्ति की कहानी हमें याद है जो कहता था कि वह ईश्वर को उसकी नज़रों के सामने कुलबुलाते हुए देखता है। जो ऐसा देखता है, उसकी निरंतर निकटता किसी को भी बेचैनी से भरने के लिए काफ़ी है, रवींद्रनाथ भी बेचैन हो जाया करते थे। उनके कामों को बिगाड़ देने वाले उस विक्षिप्त-से व्यक्ति का संसर्ग उन्हें बिलकुल भी पसंद नहीं आता था। लेकिन हमें पता चलता है कि किसी एक दोपहर उसी व्यक्ति के आविर्भाव से वे 'संपूर्ण आनंदित'

हो उठे थे, सहृदयता से उसका स्वागत कर उन्होंने उसे अपने पास बुला लिया था। कैसे संभव हो सका था यह बदलाव?

सदर स्ट्रीट के बरामदे में खड़े होकर सूर्योदय देखने का एक संस्मरण हमारी चेतना में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है। हो सकता है उसी के फलस्वरुप जोड़ासाँको की छत पर खड़े रवींद्रनाथ की एक शाम की उपलब्धि की बात थोड़ी धुँधली पड़ गई है। जोड़ासाँको की छत पर एक शाम अचानक उनकी नज़रों में 'पड़ोस के घर की दीवारें तक' सुंदर हो उठी थीं, उसकी तुच्छता के सारे आवरण मानो पूरी तरह से हट गए थे। वे भला हटे कैसे? मेरे 'मैं' को हटा सकने की वजह से। तब द्रष्टा के मन में यह बोध उत्पन्न हुआ कि उस मैं के लिपटे रहने के कारण हम बाहर के जगत को उसके असली स्वरुप में देख ही नहीं पाते। उन्हें लगा कि साँझ के अँधेरे में मेरा मैं जितना मिटता जाता है, उतनी ही अपनी निजस्वता लिए बाहर का जगत जागने लगता है। तभी हमें दिखाई देता है उसका परिपूर्ण स्वरुप, तब वह हमें सुंदर लगने लगता है।

लेकिन इस मैं को ढँकने के लिए-- या फिर दूसरे शब्दों में कहें तो बाहर के मैं को ढँक कर भीतर के मैं को जगाने के लिए-- तो क्या साँझ का वह अँधेरा ही एकमात्र उपाय है? निश्चय ही ऐसा नहीं है। असल बात है आँखों पर से एक पर्दे का हट जाना, जिस भी तरह से हो, देखने को दृष्टि बना लेना। सदर स्ट्रीट के बरामदे ने एक सुबह वह दृष्टि पैदा कर दी थी। आँखों से देखकर जो एक दिन अजीब या त्याग करने योग्य लगा था, दृष्टि से देखने ने उसके भीतर के भिन्न और एक समग्र व्यक्ति को मानो सामने उपस्थित कर दिया था। आँखों के आवरण हटते जाते हैं, सिर्फ़ आँखों से न देखकर समूचे चैतन्य से देखने की शुरुआत होने लगती है, 'वॉल्डेन' में जैसा कि थोरो ने एक बार लिखा था 'दि होल बॉडी इज़ वन सेन्स', ऐसे ही सब कुछ एकाकार हो जाते हैं। और तब ही, मन के उस अवस्थान से जो कुछ दिखाई देता है उसका समूचा ही मानो रवींद्रनाथ के शब्दों में-- 'निखिल समुद्र के ऊपर से तरंगलीला की तरह' धावमान लगने लगता है। तब हमें अपने देखने का एक भिन्न अर्थ मिल जाता है।

इसका मतलब क्या फिर यह है कि समस्त चेतना से देखने के उस अनुभव के लिए हमें किसी आकस्मिक दैवीय क्षण की प्रतीक्षा में रहना होता है? छिन्नपत्र की एक चिट्ठी में रवींद्रनाथ ने लिखा था: 'चित्त के दर्शन, स्पर्श, श्रवण और मनन की शक्ति को यदि सचेतन रखना हो, जो कुछ प्राप्त होता है उसी को रखना हो, तो फिर स्वयं को अतिप्राचुर्य से वंचित रखना चाहिए।' अतिप्राचुर्य से वंचित? लेकिन ऐसा कैसे किया जा सकता है? 'दाउ मस्ट डू विदाउट, दाउ मस्ट डू विदाउट'-- तब रवींद्रनाथ ने गेटे की इस पंक्ति का स्मरण किया था। इस 'विदाउट', या फिर प्राचुर्य से इस तरह हटा लेना क्या हमें 'वॉल्डेन' के पथ तक पहुँचा देगा? स्वयं को सब कुछ से मुक्त रखने के लिए प्राकृतिक जगत के साथ स्वयं को पूर्ण रूप से जोड़ कर सचमुच के जीवनयापन के लिए, लोगों के घरों से मीलों दूर के एक जलाशय के पास हेनरी डेविड थोरो ने ढाई वर्ष जीवन व्यतीत किया था। जो 'जीवन' नहीं है, उन्होंने उसे लेकर जीवित रहना नहीं चाहा था, और सब कुछ को त्यागने की भी उन्होंने कामना नहीं की थी। मामूली इच्छाएँ लिए स्वेच्छा के साथ जीवन बिताने वे जंगल से घिरे उस जलाशय के किनारे आए थे, क्योंकि वे अपनी चेतना को जाग्रत रखना चाहते थे। उनका मानना था कि उन्होंने किसी भी व्यक्ति को पूरी तरह से जाग्रत नहीं देखा। जो जागा हुआ नहीं है, तो फिर उसके चेहरे की ओर वे भला कैसे देखेंगे? 'विशाल खुले दिगंत के बीच में जो विचरता रहता है, उससे अधिक सुखी और कोई भी नहीं'- यह बात याद दिलाकर थोरो मुक्त दिगंत की ओर चले गए थे।

लेकिन उस मुक्त दिगंत को क्या कोई अपने भीतर ही नहीं पा सकता, लोगों की बस्तियों के इसी दायरे में? इसके लिए क्या किसी विशेष स्थान या विशेष काल के अवसर की दरकार होती है? कोई विशेष स्थान या विशेष कोई काल आत्म-उन्मोचन में उसे थोड़ी-बहुत मदद कर सकते हैं यह सही है, लेकिन मनुष्य के लिए उससे भी बड़ी गरिमा की बात यह है कि वह स्वयं ही अपने भीतर उस अवसर, उस स्थानकाल को तैयार कर सकता है। 'छिन्नपत्र' की जिस चिट्ठी से कुछेक पंक्तियाँ थोड़ी देर पहले ली गई थीं, उसका पहला वाक्य इस प्रकार था: 'कौन मुझे बहुत गहराई से सारी चीज़ों को देखने का कह रहा है'। कौन कह रहा है? यह तो मेरा ही एक मैं बोल रहा है। हमारी

> 'फाल्गुनी' नाटक में कहा गया है कि 'विदा की वंशी में जब कोमल धैवत लगता है मैं तभी सबकी ओर आँख उठाकर देखता हूँ।' और तभी हमें ध्यान आता है कि 'पृथ्वी की ओर इस तरह से हमने कभी नहीं देखा'। तभी याद आता है कि हाँफते-हाँफते दौड़ कर जाते हुए 'आँखें सिर्फ़ सामने की ओर लगी रहती हैं, चारों ओर नहीं।'

चिंता केवल इतनी है कि किस तरह उस मैं के आह्वान को हम सुन सकेंगे। चिट्ठी में इसके बाद एक शब्दबंध इस प्रकार है: 'व्रतयापन की तरह जीवनयापन'। लेकिन यह व्रतयापन किसी सर्वत्याग का संन्यास नहीं है, यह सर्वग्रहण की एक उन्मुखता है। और वह ग्रहण है बाहर के जगत को-- मेरे 'नहीं-मैं' को-- ग्रहण करना। जब कहता हूँ कि 'दाउ मस्ट डू विदाउट', तब मेरा आशय वही छोड़-दिए गए केवल मेरे सुखकातर बहिरंग के मैं को छोड़ देने से है। उस छोड़ दिए जाने से ही मेरा देखना बदल जाता है- बदल सकता है- दृष्टि में। रवींद्रनाथ हमें वही दृष्टि उपलब्ध कराते हैं।

उसी दृष्टि का नाटक है 'डाकघर'। इस नाटक के अमल ने बताया था कि बड़ा होकर वह क्या करेगा। उसने कहा था: 'जो कुछ भी है मैं सब देखूँगा-- मैं तो बस देखता फिरूँगा।' फूफाजी अवाक हो गए थे। उन्होंने कहा था: 'एक बार सुनो! तुम क्या देखोगे? देखने को इतना है भी क्या?' सच ही तो है, यह सांसारिक प्रतिक्रिया स्वाभाविक ही है: देखने को इतना है भी क्या! जीवन की छवि कहूँ या प्रकृति की, रोज़मर्रा की आदतों में तो हम उसे हर पल पाते ही रहते हैं, उससे तो मेरा बहुत गहरा परिचय है और इसीलिए वह बेहद जीर्ण है। यह जो कुछ लोगों, पेड़-पौधों या दुकानों की पंक्तियों के पास से होते हुए, मेरे घर के पास वाले रास्ते से होते हुए मैं बड़े रास्ते पर पहुँच रहा हूँ, वहाँ पर मेरे लिए नए सिरे से देखने लायक भला क्या हो सकता है? ठीक उसी तरह, कोई बुआ यदि जाँते से दाल के दाने तोड़ती हैं, पूँछ के बल खड़ी होकर गिलहरी यदि कुतर-कुतर कर उसके छोटे-छोटे कण खाती है, या फिर दूर किसी एक पहाड़ का शिखर दिखाई दे जाए, बाँस की लाठी के सिरे पर पोटली बाँधे लोटा हाथ में लिए कोई व्यक्ति उस पहाड़ की ओर चला जाए, इन सबमें ऐसा क्या ख़ास दिखाई देता है? अमल को क्या दिखाई देता है? ऐसा तो हमें हमेशा ही नज़र आता है। लेकिन उस देख पाने से थोड़ा और आगे बढ़ जाता है अमल का देखना। आँखों के सामने उसे मानो दिखाई देता है कि कंधे पर चिट्ठियों की थैली और हाथ में लालटेन लिए हुए एक डाक-हरकारा पहाड़ से उतरता आ रहा है, उसे नदी के किनारे ज्वार के खेत दिखाई देते हैं, खेत में झींगुरों की झनकार, पूँछ हिलाते चाहापक्षी। यह सुनकर ठाकुरदा ने कहा था: 'मेरी तो ऐसी नवीन आँखें हैं नहीं फिर भी मुझे तुम्हारे साथ-साथ दिखाई दे रहा है।'

आँखों की यह नवीनता केवल उम्र की नवीनता नहीं है, सभी उम्र में वह नवीनता उद्यत रह सकती है। किसी भी वस्तु या घटना को जब हम समय के प्रवाह के साथ संलग्न कर देख पाते हैं, तब आँखों की नवीनता आती है। स्वयं को किसी भविष्य की ओर हटा कर, यदि वर्तमान के इस मुहूर्त को अभी मैं अतीत मान लूँ, तो फिर वह उसी समय एक नया रुप धारण कर लेता है, और उसके चारों ओर एक मायामंडन निर्मित होने लगता है। मेरे देखने में तब एक ही साथ अतीत, वर्तमान और भविष्य आपस में मिल जाते हैं। रहने के साथ मिल जाता है न-रहना, जीवन के साथ मिल जाती है मृत्यु। अर्थात, एक हिसाब से, मृत्यु की ओर से देखें तो जीवन के हरेक क्षण को और भी कसकर जकड़ लेने की इच्छा होती है, तब और भी अधिक समग्रता के साथ उस क्षण को देखना संभव हो पाता है। 'फाल्गुनी' नाटक में कहा गया है कि 'विदा की वंशी में जब कोमल धैवत लगता है मैं तभी सबकी ओर आँख उठाकर देखता हूँ।' और तभी हमें ध्यान आता है कि 'पृथ्वी की ओर इस तरह से हमने कभी नहीं देखा', तभी याद आता है कि हाँफते-हाँफते दौड़ कर जाते हुए 'आँखें सिर्फ़ सामने की ओर लगी रहती हैं, चारों ओर नहीं।'

अपनी 'वागेश्वरी व्याख्यानमाला' में अवनींद्रनाथ ने लिखा था: 'बचपन के दिन और रातों के लिए सब लोगों के मन में जो एक वेदना रहती है, उस वेदनापूर्ण राज्य में मनुष्य के मन को कवि और चिंतक रह-रह कर लौटा ले जाते हैं, जिन्हें बच्चों-जैसी तरुण आँखें फिर से मिल गई हैं।' यहाँ पर भी उन्हीं तरुण आँखों की बात हो रही है। लेकिन यहाँ पर वे आँखें कवि और चिंतकों के माध्यम से आ रही हैं। क्या सभी को कवि या फिर चिंतक होना होगा? हम साधारण लोगों की दृष्टि में भी वह तरुणाई या नवीनता क्या कभी नहीं आ सकती? हम क्या हमेशा ही 'डाकघर' के उस छिदाम भिखारी की तरह हैं, जो झूठमूठ का काना है 'लेकिन उसे आँखों से दिखाई नहीं देता।

यह सच ही है कि काने न होते हुए भी अकसर हमें आँखों से दिखाई नहीं देता, हमारा देखना सच्चा-देखना नहीं हो पाता। 'शांतिनिकेतन'-भाषण के 'देखना' रचना में रवींद्रनाथ ने दो पदों का प्रयोग किया था: देखने की कली और विकसित देखना। 'हम लोग आँख खोलते हैं, हम देखते हैं। लेकिन वह देखना देखने की कली भर है, वह अब भी अंधी है। ..... विकसित देखना अभी तक संभव नहीं हो सका, भरपूर देखना अभी तक नहीं हो सका।' तो किस प्रकार वह विकसित या भरपूर देखना संभव हो सकेगा? उस देखने के लिए रवींद्रनाथ ने किसी ध्यान का प्रस्ताव नहीं दिया। उन्होंने कहा है, वह देखना 'तुम्हारे भीतर ही है'।

वर्ष 1908 में कही गई इस बात के साथ 1910 का एक नाट्योच्चारण हमें याद आएगा: 'मेरे ही भीतर मेरी उपमा है'। बाहर के रूप में राजा को देख पाना सुदर्शना के लिए तब ही संभव हुआ था, जब स्वयं के ही भीतर उसे बाहर की 'उपमा' मिल गई थी। इस मिलने के पथ पर उसे कितनी ही ग़लत देखने की कलियों को छोड़ कर आना पड़ा था, अर्थात बाहर के रूप और वर्तमान को ही सर्वस्व मान लेने की ग़लतियों को। राजा नाटक भी कली से एक विकसित देखने में पहुँचने का नाटक है। 'देखना' भाषण में उल्लेख है: '..... रोज़ सुबह कई योजन दूर से उजाला आकर कहता है- देखो' और 'राजा' नाटक का राजा कहता है: 'मेरे चित्त में यदि देख सको तो तुम्हें दिखाई देगा वह कितना बड़ा है!' ऐसा हम हर वक़्त क्यों नहीं देख पाते? क्योंकि हम केवल अपनी ओर से देखते हैं, लेकिन 'अपने आइने में नहीं दिखाई देता- वह छोटा पड़ जाता है।' भाषण में यही बात दूसरे शब्दों में कही गई थी, बँधे-बँधाए शब्दों और मतों के 'संस्कारों द्वारा दबा दिए जाने से हमारी दृष्टि निर्मल निर्मुक्त रुप से जगत के संपर्क में नहीं आ पाती।'

जीवन को देखना, केवल उसकी निर्भार सुंदरता को ही देखते रहना भर नहीं है। रुखे को देखना होता है, सर्वनाश को भी, यहाँ तक कि मृत्यु को भी। लेकिन देखने की इस समग्रता में पहले से जिसने मृत्यु की तैयारी नहीं की वह सह नहीं पाता यह सर्वनाश।

जीवन को देखना, वह केवल उसकी निर्भार सुंदरता को ही देखते रहना भर नहीं है, रुखे को देखना होता है, सर्वनाश को भी, यहाँ तक कि मृत्यु को भी। लेकिन देखने की इस समग्रता में 'पहले से जिसने तैयारी नहीं की वह .... सह नहीं पाता' यह सर्वनाश। मनुष्यों के बीच में ही 'कौन-सा वह भीषण जीवन-मरण विराजता है', जहाँ पर 'कितनी ही विफलताएँ, कितने ही दुराव-छिपाव हैं'- इन सबको देख पाने के लिए मन को तैयार करना पड़ता है। 'राजा' उसी तैयारी का नाटक है।

और, यदि एक बार यह तैयारी हो जाए, यहाँ तक कि यदि मृत्यु को भी समझ लिया जाए, तो फिर सुदर्शना की आँखें अमल की आँखों तक आ सकती हैं, जो अमल शांतभाव से सारी इंद्रियों द्वारा जीवन को पाता है, मृत्यु को भी। और तब बाहरी आँख की भी ज़रुरत नहीं होती, और तब ही हम 'फाल्गुनी' के बाउल के पास पहुँच पाते हैं, जो नेत्रहीन है, लेकिन जिसका 'समूचा बदन मानो बहुत दूर से भी देख पाता है'। समूचे बदन के यह देख पाने की बात सुनकर 'वॉल्डेन' की वह पंक्ति हमें फिर से याद आ जाती है 'दि होल बॉडी इज़ वन सेन्स'। उसी एकत्व से, वही 'वन सेन्स' होकर ही कोई कह सकता है: 'मैंने अपने सब कुछ से देखा था', कह सकता है: 'आँखों से नहीं देख पाता इसलिए वह अपनी देह, अपने मन, प्राण

छाया: आदित्य उपाध्याय

सब कुछ से देखता है'। 'राजा' से 'डाकघर' होते हुए इस 'फाल्गुनी' तक पहुँचते-पहुँचते रवींद्रनाथ की रचनाओं में यह 'देखने' का नाट्य तैयार हो जाता है। रानी की आँखें हैं लेकिन उन्हें दिखाई नहीं देता, तमाम अनुभवों के माध्यम से अंत में वे देखना सीखती हैं; अमल की आँखें हैं, उसे दिखाई देता है, वह देखते-देखते अतीन्द्रिय में पहुँच जाता है; और अंधे बाउल की भी आँखें नहीं हैं, फिर भी उसे दिखाई देता है, उसे अंधकार के सीने में उजाला नज़र आता है।
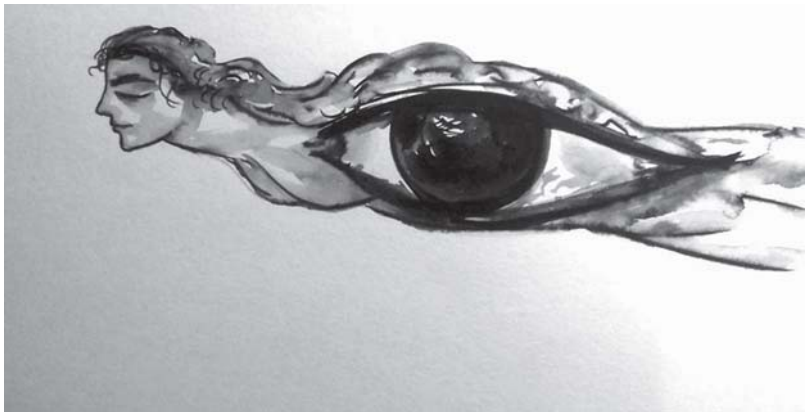
यह 'विकसित देखना' ही भीतर से देखना है। 'फाल्गुनी' में तो कहा ही गया है: 'उसे भीतर से दिखाई देता है', 'डाकघर' में हमें सुनाई देता है: 'भीतर की ओर से एक रास्ता है, उसे ढूँढ़ पाना शायद कठिन हो' और 'राजा' में आँखों देखे और कानों सुने को मिटाकर 'हृदय के भीतर जो गहन पथ वाला कुंजवन है' वहाँ सुदर्शना की भी एक बार जाने की इच्छा होती है।

उसी 'भीतर' को हम बार-बार खो देते हैं। इसीलिए फिर हम मनुष्य को भी मनुष्य के रुप में नहीं देख पाते, प्रकृति को भी उसकी स्वच्छ प्राकृतिकता में पाना हमारे लिए संभव नहीं हो पाता। जिसे मैंने समय के प्रवाह में रखकर देखना कहा था, भीतर की ओर से सोचें तो उसी बात का दूसरा रुप होता है मृत्यु की ओर से जीवन को देखना। 'राजा' नाटक में ठाकुरदा ने वही देखा था, यहाँ तक कि सुदर्शना ने भी लोहे-जैसा कठोर अंधकार देखा था, जो 'नींद-जैसा, मूर्च्छा-जैसा, मृत्यु-जैसा' था। अमल उसके अवसान के समय से ही प्रवहमान जीवन को निहारता रहा है, और 'फाल्गुनी' की भी अवसान-गुफा से 'बार-बार ही प्रथम, लौट-लौटकर प्रथम' हो उठे हैं जीवन-सरदार। उन सब अनुभवों के समय हमें लग सकता है कि 'पृथ्वी की ओर इस तरह से हमने कभी नहीं देखा'। और तभी हमें मृत्युपथ के यात्री यतीन की याद आ सकती है: 'देखने की चीज़ को देख पाने का सौभाग्य क्या कम है?' उसने कहा था: 'उसी के अच्छा लगने के भीतर से इस पृथ्वी का मैंने बहुत उपभोग किया है।' आत्महत्या की कगार पर खड़े अभिजित ने कहा था: 'सुंदर जगत', अपने अंतिम क्षणों में उसने मरण के माधुर्य और जीवन के सौंदर्य को एकाकार कर लिया था।

जब सोचता हूँ कि रवींद्रनाथ से हम आज क्या पा सकते हैं, तब उसका उत्तर सैकड़ों टुकड़ों की शक्ल में हमारे सामने बिखर सकता है। हमारे शिल्प या जीवन में, हमारे दैनंदिन में, सामाजिकता या दार्शनिकता के विभिन्न स्तरों में नाना प्रकार से उसके उत्तर आ पहुँचते हैं। लेकिन उन तमाम उत्तरों की-- या किसी भी उत्तर की-- केन्द्रीय भूमि को यदि हम समझना चाहें, तो फिर हमारी सोच में थोड़े-बहुत बीज शब्द अनायास ही चले आते हैं। रवींद्रनाथ के समूचे शिल्प या जीवन में वैसा ही एक बीज शब्द है 'देखना'। हमारा देखना जब दृष्टि में बदल जाता है, तब ही सामने वाले उस चले जा रहे व्यक्ति से लेकर आवर्तित समाजभूमि तक समूचा भिन्न और सत्य एकरुप होकर हमारे सम्मुख जागने लगता है। जिस देखने में 'भोर के उजाले की आँखों से/ ख़ुद को पाता हूँ नए रुप में', यही देखना किसी समाजकर्मी की आँखों के आवरण ('विजयासम्मिलन') को भी हटा सकता है, हम तब देश के एक 'अखंड स्वरुप' को देख पाते हैं, देश की 'आत्मा' को देश के भीतर सचमुच देखना संभव हो पाता है ('सत्य का आह्वान')। हम जो 'हज़ार-हज़ार यथार्थ को खंड-खंड करके एक के बाद एक को देखते चलते हैं' ('सत्य को देखना'), वह हमारी विफलता है। शिल्प से, जीवन से, रवींद्रनाथ ने हमें देखने की वह दृष्टि देने की कोशिश की थी, ताकि देशकाल के मध्य में रखकर भी सब कुछ को देशकाल के बाहर से पाया जा सके। जब हम समझ पाते हैं कि हर क्षण मृत्यु का क्षण है, तब ही जीवन को देख पाना सच हो उठता है, सुंदर हो उठता है। तब ही जीवन को अपनी मुट्ठी में और भी कसकर पकड़ने की इच्छा होती है। लेकिन, वह मुट्ठी मेरी व्यक्तिगत मुट्ठी नहीं है, वह एक आत्मगत मुट्ठी है, वही आत्म, जो मुझे लगातार दैनंदिन 'मैं' से बाहर ले आना चाहता है।

चाहापक्षी: **एक जलीयपक्षी जिसका समूचा शरीर फूलदार और पीठ सुनहरी होती है। यह चोंच की मदद से कीचड़ में अपना भोजन तलाशता है।**

हरित बाँस की बाँसुरी

संदर्भ- बिहारी सतसई

श्यामसुंदर दुबे

रंग बोलते हैं। रंग चुप रहते हैं। रंग रोते हैं–गाते हैं। रंगों का संसार व्यापक है। चित्रकार और कवि दोनों रंगों की लीला में डूबकर जीवन के रंगों की तलाश करते हैं, रीतिकालीन कवियों के पास रंगों का न केवल ज्ञान था, बल्कि वे रंग–विज्ञान से भी परिचित थे। रीतिकाल, कला–संकुल का पर्याय है। चित्रकार कवि संगीतज्ञ शिल्पी सब का आपस में तालमेल था इसलिए वे कला क्षेत्र के अंतर्संवादी थे। बिहारी को ही ले लीजिए, सतसई के प्रारंभिक दोहे में उन्होंने अपने रंग–ज्ञान का खुलासा किया है।

भारत की प्राचीन चित्र शैलियों में अंकित कलाकृतियों पर नज़र जाती है तो साहित्य और रंग–रेखाओं के बीच अद्‌भुत परस्परता दिखाई देती है। अग्रणी ललित निबंधकार श्यामसुंदर दुबे इस शोध–आलेख में सृजन की दो विधाओं के बीच अंतर्संवाद की पड़ताल कर रहे है।

कला विदग्धता के परिसर में कला के किसी भी माध्यम से जुड़े कलाकार को रंगों की प्रकृति, उनकी संगति और उनके संश्लेष के साथ उनके गुण-धर्म का ज्ञाता होना ज़रुरी है। चित्रकला को इस तरह के रंग-बोध में तो दक्ष होना ही चाहिए, किंतु कवि को भी रंग-ज्ञान से भरपूर रहना ज़रुरी है। शब्दों के भीतर छिपी रंग-आभा को जाने बिना कवि अपने शब्द-संवाद में सही बिम्ब रचना और अलंकारों का सम्यक् समायोजन नहीं कर सकता है।

रंग बोलते हैं। रंग चुप रहते हैं। रंग रोते हैं-गाते हैं। रंगों का संसार व्यापक है। चित्रकार और कवि दोनों रंगों की लीला में डूबकर जीवन के रंगों की तलाश करते हैं, रीतिकालीन कवियों के पास रंगों का न केवल ज्ञान था, बल्कि वे रंग-विज्ञान से भी परिचित थे। रीतिकाल, कला-संकुल का पर्याय है। चित्रकार कवि संगीतज्ञ शिल्पी सब का आपस में तालमेल था इसलिए वे कला क्षेत्र उके अंतर्संवादी थे। बिहारी को ही ले लीजिए, सतसई के प्रारंभिक दोहे में उन्होंने अपने रंग-ज्ञान का खुलासा किया है। वे लिखते हैं- ''मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय। जा जन की झाँई परत, स्याम हरित दुति होय।'' राधा की पीले रंग की छटा कृष्ण के नीले रंग से मिलकर हरे रंग का परिवेश रच रही है। वे जानते थे कि पीला और नीला रंग मिलकर हरा हो जाता है। यहाँ बिहारी के एक और दोहे की इसी संदर्भ में चर्चा की जा रही है दोहा इस तरह है- ''अधर धरत हरि कैं परत ओठ-दीहि-पर-जोति/हरित बाँस की बाँसुरी इंद्रधनुष रंग होति।''

दोहा विषय-वस्तु की चर्चा करके मौन नहीं है, वह मुखर है। अपने भीतर के अर्थ को अनेक तरह से व्यंजित करने के लिए। कृष्ण के अधरों का संयोग पाकर बाँसुरी जो हरे रंग की थी वह इंद्रधनुषी हो उठी। सात रंगों में रंग-बिरंगी हो गयी है। जब बाँसुरी के अनेक रंग खिल उठे हैं तब आस-पास का वातावरण भी प्रसन्न और मनोहारी है। बाँसुरी इन रंगों में कैसे अभिव्यक्त हुई? इस पर विचार करने से दोहे का एक और अर्थ-पक्ष खुलने लगता है कि कृष्ण के ओंठ और दृष्टि की छाया बाँसुरी पर पड़ रही है। बाँसुरी इतनी उज्जवल है कि वह प्रतिबिम्ब निर्मित करने में सक्षम है। इस तरह कृष्ण के ओंठ की ललाई, नेत्रों की कालिमा एवं उजराई तथा वस्त्र की पीली चटक और प्रभा की ओर संकेत है। कृष्ण के आकर्षक व्यक्तित्व को दोहा प्रत्यक्ष कर रहा है। आख़िर यह कथन, कवि-कथन होते हुए भी किसके निमित्त है और किसने कहा है। यदि परस्पर यह कथन है तो सखी और राधा के मध्य है ऐसा अनुमान व्याख्याकारों ने किया है। सखी जैसे कुंज में कृष्ण को बाँसुरी बजाते हुए देख आई है। वह राधा से अपने इसी अनुभव का बखान कर इस मनोहारी दृश्य को दिखाने राधा को कृष्ण के पास ले जाना चाहती है। स्पष्ट है कि वह इस रंग-चमत्कार के बहाने राधा के मन में आकर्षण उत्पन्न करना चाहती है। इस सखी-कथन में एक तथ्य यह भी छिपा है कि यदि सामान्य बाँस से बनी हुई बाँसुरी इंद्रधनुषी छटा से खिल गयी है, तो राधा वहाँ पहुँचने पर अद्वितीय शोभा से युक्त हो उठेगी।

चित्रकार के समक्ष अनेक दृश्य हैं। मन है, लता-वितान हैं, आकाश है। इंद्रधनुष है, कृष्ण हैं, कृष्ण की बाँसुरी है, उसका स्वर निनाद है। सखियाँ हैं। और फिर चित्रकार का अपना कल्पना संसार

कृष्ण बाँसुरी बजाने में तल्लीन हैं और ऐसा लगता है जैसे संपूर्ण वातावरण प्रफुल्लित और उत्कंठित है, किन्तु बहुत चुपके-चुपके। यह चित्रकार की कल्पना का संसार है, जो दोहे के भाव-जगत से प्रेरित है। दोहा प्रसन्न वातावरण निर्मित करता है। दोहे में कृष्ण हैं, बाँसुरी है। बाँसुरी की तान भी नहीं है, है तो केवल बाँसुरी का रंग-विन्यास और इस रंग-विन्यास को आकृतिवान करने वाले कृष्ण के औष्ठ, आँखें और परिधान! उस समय के चित्रकारों ने कृष्ण की एक शबीह गढ़ ली थी। कम से कम जब कोई चित्रकार कई बार कृष्ण की छवि को अंकित करता था, तब वह एक अपनी गढ़ी छवि में किंचित उलट-फेर के साथ लगभग अपने प्रत्येक कृष्णाश्रयी चित्र में कृष्ण की यही छवि चित्रित करता था। यह केवल कृष्ण की छवि के साथ ही नहीं था। राधा और सखियों की छवि-अंकन में भी यह प्रक्रिया स्पष्ट होती है। विभिन्न चित्र शैलियों में प्रायः अपनी-अपनी तरह की अंग-आकृतियाँ, अपने तरह का वस्त्र-विन्यास, यहाँ तक कि अपने तरह के वृक्ष, लता-गुल्म, फूल-पत्ती, बेलबूटे आदि चित्रित किए जाते रहे हैं और यही सब उस विशेष कलम के निर्धारक रहे हैं। इसलिए राजपूताना चित्रशैली में कृष्ण राधा और सखियों आदि की संरचना में एक निश्चित सा चित्र प्रतिमान है। इसलिए इस शैली में बाँसुरी बजाते कृष्ण को विरल अंतर के साथ विभिन्न चित्रों में देखा जा सकता है। कृष्ण की इस छवि पर राजस्थानी कला मानकों का भी प्रभाव है।

है। चित्रकार ने अपनी चित्र-रचना हेतु प्राकृतिक पृष्ठभूमि की संरचना के लिए कल्पना के सौंदर्य को उजागर किया है। वृक्षों का सघन क्षेत्र और इस के पीछे बादलों का घिरना, इन बादलों के बीच से झाँकता आसमान और आसमान में बादलों के दबाव के बीच से फैलती सूर्य-किरणों की आभा। नदी-तट का विस्तृत कछार और फूल-पत्तों तथा अन्य वनस्पतियों का प्राकृतिक परिवेश सुहावना बन पड़ा है। इस परिदृश्य में चित्रकार ने दोहे के वस्तु-संसार से अंतर्संबंध करने के लिए बाँसुरी बजाते कृष्ण की छवि को अंकित किया है। कृष्ण के बाजू में दो सखियाँ खड़ी हैं। दूसरी ओर चार सखियाँ हैं। इनमें एक सखी जैसे शेष तीन सखियों को संबोधित कर रही है। सभी सखियों के ध्यान केन्द्र में कृष्ण हैं। भले ही एक सखी जो तीन सखियों को संबोधित कर रही है- कृष्ण की ओर पीठ किए हो।

बाँसुरी वादन करते हुए कृष्ण नृत्य मुद्रा में हैं। दोनों हथेलियों से वे बाँसुरी थामे हैं। मुख एक तरफ झुका हुआ हैं कमर टेढ़ी है। एक पाँव पंजे के बल उठा है। दूसरा पाँव भी उठा हुआ है जो एड़ी के बल पर है। कृष्ण के सामने चार सखियाँ है। एक सखी जो तीन सखियों को संबोधित कर रही है। वह कृष्ण को पीठ दिये हैं। दोनों हाथ ऊपर उठाए खुली हथेलियाँ आकाश की ओर किये है। उसके सामने वाली एक सखी सामने कमर पर एक हाथ रखे है, दूसरा हाथ संवाद की मुद्रा में मुख से कुछ नीचे है। दूसरी सखी चौथी सखी की ओर लेकर खड़ी है। उसका चेहरा और एक हाथ दिखायी देता है। चौथी सखी एक हाथ कमर से नीचे किए है। दूसरा हाथ चूनर अपनी कोहनी में लिए वक्ष की ओर मुड़ा है। कृष्ण की दूसरी बाजू में खड़ी दो सखियाँ आपस में वार्तालापरत नहीं हैं, वे कृष्ण को ही देख रही हैं। सामने वाली सखी का एक हाथ कमर को सामने से घेरे है। जबकि दूसरा हाथ वक्ष से मुड़कर ठोढ़ी तक गया है। लगभग इसी मुद्रा में दूसरी सखी खड़ी है। चित्रकार ने इस तरह अपना एक संसार कला में रचा है।

चित्र का रंग-संयोजन और दृश्यांकन बेहतरीन हुआ है। वृक्षों के पत्तों और फूलों को उभार कर चित्रकार ने वन को मोहक बना दिया है। पीली कलियों के मध्य लाल बुंदकियों के माध्यम से प्राकृत पुष्प राजि का अंकन किया गया है। आकाश में उमड़ते-घुमड़ते बादलों की काली घटाओं के बीच दीप्तिवान नीला आकाश झाँक जाता है। इन्हीं बादलों के मध्य आर्क बनाता इन्द्रधनुष चित्रकार ने बनाया है। ये इन्द्रधनुष एक तरह से 'हरित बाँस की बाँसुरी इन्द्रधनुष रंग होति'' का प्रतीकात्मक आख्यान है। यद्यपि चित्रकार ने जो कृष्ण के हाथों में छोटी-सी बाँसुरी है उसे भी इन्द्रधनुष की रंग-छवि से परिपूर्ण किया है, किन्तु वह इतनी छोटी है कि उसकी यह आकृति स्पष्ट नहीं ले पाती है। यही वजह है कि चित्रकार ने अलग से प्राकृतिक इंद्रधनुष को चित्रित किया है।

कृष्ण का वर्ण आकर्षक नीला है। वे तीन घेरों वाला घाँघरा या बागा पहने हैं। इसकी फैलान एकदम कलात्मक है। इसमें तीन परते हैं। पहली परत केशरिया रंग की है। दूसरी परत गुलाबी और तीसरी परत लाल है। इन रंगों में शेड्स भी बनाये गये हैं। कमर बंध सफेद हैं, सामने की ओर झूलता। उसकी फहरान नीचे चौड़ी हैं। नीचे के हिस्से में सुनहरी डिजायन बनायी गयी है। इसके साथ वे फैला चूड़ीदार पाजामा पहने हैं। कंधों से लहराता सफेद झीना दुपट्टा नृत्य की मुद्रा की पुष्टि कर रहा है मोर मुकुट बहुत सुंदर है। पगथतियाँ लाल है। सफेद मालारें वक्ष, ग्रीरा में कृष्ण धारण किये हैं। कानों में लटकन है। आँखें विशाल और दृष्टि उज्ज्वल है। वे बाँसुरी वादन में और नृत्य में पूर्णतः संलग्न है। आगे-पीछे खड़ी सखियों के वस्त्र घाघरा, कंचुकी और चूनर है। घाघरे केशरिया, लाल, पीले-सुनहरे, सफेदी लिए गुलाब रंग के हैं।

इन्हीं रंगों में कंचुकी भी है। घाघरे के सामने वाला पट्टा नीला, लाल, केशरिया, सफेद, मुघ्दिम काला है। ओढ़नियाँ एकदम झीनी है। आमरण धारण करने वाली इन सखियों के बाल घने काले और बिखरे हैं। एक सखी जो तीन अन्य सखियों से वार्तालापरत है वह दोनों हाथ ऊपर उठाकर कह रही है कि देखो, कृष्ण की बाँसुरी इन्द्रधनुष जैसी दिख रही है, विश्वास न हो तो आकाश में उदित होते इन्द्रधनुष से मिलाकर उसकी तुलना कर लें। यह बाँसुरी का इन्द्रधनुष हो जाना चमत्कार जैसा है और इस चमत्कार को उत्पन्न किया है कृष्ण के ओंठ, नेत्र और पीतांबर ने इसलिए जितना दर्शनीय यह इन्द्रधनुष का दृश्य है- उससे अधिक दर्शनीय कृष्ण है। रंगों का समायोजन चित्रकार ने दोहे की प्रकृति के अनुकूल किया है। बहुरंगी यह चित्र छाया-प्रकाश के अद्भुत मिश्रण का उदाहरण है। राजपूताना शैली का यह चित्र आँखों पर गहरा असर छोड़ता है।

मातृत्व की धन्यता से भरे शिल्प

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

भारत में जब-जब भी स्त्रियों के उत्कीर्णन हुए, शिल्पी ने उस वात्सल्य के भाव को जीवंत रखा, जो स्त्री का मूल भाव है। नायिका हो, अप्सरा हो अथवा शालभंजिका हो या अंबिका, वह मातृत्व भाव अपनी पूरी सौम्यता के साथ इनके चेहरों पर छलक आया है, जिस भाव के कारण भारतीय परंपरा स्त्री की पूजा करती है।

जितना साहित्य मातृत्व को लेकर रचा गया, वह इस तथ्य का साक्षी है कि सृजनात्मकता कितनी शक्तिशाली होती है। मातृत्व सृजन का पर्याय है, लेकिन साहित्य के यह शब्द उस बेजोड़ शिल्प की बराबरी नहीं कर सके, जिस शिल्प में मातृत्व और उसकी परिणति वात्सल्य को उरेहा गया था।

शिल्पांकन की परंपरा भारत में अत्यंत प्राचीन है। इसके प्रमाण सिंधुघाटी की सभ्यता में मिलते हैं, जिसके बारे में अनुमान है कि वह ईसा के तीन हज़ार वर्ष पूर्व से पंद्रह सौ वर्ष पूर्व तक विद्यमान थी। इस सभ्यता से जुड़े स्थलों की खुदाई में मातृका की मूर्ति मिली है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि मातृकाओं की पूजा करने की अवधारणा काफ़ी पुरानी है। सप्त मातृकाओं के पूजन की परंपरा ईसा से सदियों पहले न केवल भारत में, बल्कि विश्व की अन्य सभ्यताओं में, विशेष रुप से मेसापोटेमिया की सभ्यता में, विद्यमान थी।

धरोहर

वैदिक युग, विशेष रुप से पूर्व मौर्य काल में शिशुनाग वंश (छह सौ बयालीस ईसा पूर्व से तीन सौ बाईस ईसा पूर्व) के समय में टेराकोटा में मातृका तथा भू-देवी मिली हैं। मौर्यकाल में अर्थात् तीन सौ बाईस ईसा पूर्व से एक सौ पचासी ईसा पूर्व में मौर्य शासकों के समय निर्मित यक्ष और यक्षी की प्रतिमाएँ मिली हैं, इनमें पाटलिपुत्र की खुदाई में मिली दीदारगंज की यक्षी विश्व प्रसिद्ध है। शुंग वंश के शासकों का काल एक सौ पचासी वर्ष ईसा पूर्व से ईसा की पहली शताब्दी तक फैला हुआ है। इस युग में काफी बौद्ध शिल्प बने। इस काल के शिल्पों में सांची के शिल्प सुप्रसिद्ध हैं, जिनमें मनोरम शालभंजिकाएँ उरेही गई हैं। द्राविड़ शासकों के समय में भी ईसा पूर्व अनेक शिल्प बने, जिनमें उड़ीसा में खंडगिरि और उदयगिरि तथा आंध्र में अमरावती के शिल्प प्रसिद्ध हैं। इन शिल्पों में मातृत्व की अवधारणा को शिल्पित किया गया है। ईसा के बाद की शताब्दियों, विशेष रुप से कुषाणों के समय में जो शिल्प बने, वे अद्‌भुत हैं, जिन पर गांधार प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इस समय की शिल्पांकन परंपरा में बौद्ध प्रभाव स्पष्ट हैं, किंतु मातृत्व की अवधारणा के शिल्पांकन की निरंतरता बनी रहती है। परवर्ती आंध्र शासकों के समय में भी भारत के दक्षिणी-पश्चिमी हिस्से में जो शिल्प बने, वे विलक्षण हैं। अजंता, कान्हेरी और कारले की गुफाओं के शिल्प अद्वितीय हैं। गुप्त शासकों का काल, जो

ईसवी सदी तीन सौ बीस से ईसवी सदी छह सौ तक रहा, भारतीय इतिहास में 'स्वर्ण युग' के नाम से जाना जाता है। इस युग के शासकों का शासन क्षेत्र भी बड़ा विस्तृत था। इस युग में बहुतायत में मंदिर बने।

चोल शासकों का काल आठ सौ पचास ईसवी से ग्यारह सौ पचास ईसवी के बीच था। इनके समय में तंजीर में राज-राजेश्वर मंदिर बना, साथ ही अनेक हिंदू देवी-देवताओं के शिल्पांकन हुए। पाल शासकों का समय सात सौ तीस ईसवी से बारह सौ पचास ईसवी तक था। इस काल में बौद्ध शिल्प विशेष रुप से बने। पाषाण में शिल्पित तारा की मूर्ति भी मिली है। सेन शासकों ने भारत के उत्तर-पूर्वी हिस्से में शासन किया। इनके समय में निर्मित गंगा की अनेक मूर्तियाँ मिली हैं। दसवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी का समय मध्य भारत का ऐसा गौरवपूर्ण समय था, जब चंदेलों के शासनकाल में खजुराहो की भव्य मंदिर सरणी बनी। इसमें सर्वाधिक लोकप्रिय और विशाल मंदिर है कंदरिया महादेव का। खजुराहो के मूर्तिशिल्प में मातृत्व, विशेष रुप से माता और शिशु के ऐसे भावप्रवण अंकन मिलते हैं, जिनका विश्व में कोई सानी नहीं है। चंदेलों के समय में खजुराहो में निरंतर लगभग तीन सौ वर्षों तक की अवधि तक मंदिर बने। लगभग इसी समय अर्थात् ग्यारहवीं से चौदहवीं सदी के बीच देश के उत्तर-पूर्वी हिस्से अर्थात् उड़ीसा में भव्य मंदिर बने, जिनमें कोणार्क का विश्व प्रसिद्ध सूर्य मंदिर शामिल है।

यह एक छोटी सी झाँकी है उस शिल्पांकन परंपरा की, जो भारत में मुसलमानों के आगमन के पूर्व विकसित हुई थी और जिसमें मातृत्व की अवधारणा अपने पूरे भाव और भंगिमा के साथ अभिव्यक्त हुई।

यह भी एक बेजोड़ तथ्य है कि न केवल हिंदू, बल्कि बौद्ध और जैन शिल्प भी अपनी पूरी उत्कृष्टता के साथ शिल्पी की छेनियों से अभिव्यक्त हुए। देलवाड़ा और रणकपुर के जैन मंदिरों के भव्य शिल्पों की विश्व में कोई तुलना नहीं। मध्य भारत में शिल्पांकन की परंपरा निरंतर बनी रही तथा यक्षी, अप्सरा, शालभंजिका, नायिका तथा अंबिका के जो शिल्प इस क्षेत्र में बने, वैसे कहीं अन्यत्र नहीं बने। ग्यारसपुर की शालभंजिका तथा खजुराहो की नायिका तथा माता व शिशु के शिल्प बड़े प्रसिद्ध हैं। दसवीं सदी से निरंतर ये शिल्प मध्य प्रदेश के विभिन्न हिस्सों में मिलते हैं। हमारी परंपरा में माता और शिशु के अनेक रुप हैं, जो पूजे जाते हैं, चाहे सीता हों, पार्वती हों या शकुंतला हों, इनकी पहचान लव-कुश, गणेश-कार्तिकेय और भारत से होती है। जितनी भी देवियाँ हैं, वे माता के स्वरुप में ही पूजी जाती हैं और हरेक की अपेक्षा होती है कि वह उनके वात्सल्य को प्राप्त कर सके। माता के स्वरुप की अवधारणा लक्ष्मी के स्वरुपों में भी की गई है, उन्हें भू-देवी के रुप में, अन्नपूर्णा के रुप में ऋग्वेद में स्मरण किया गया है और इस अवधारणा के अनुरुप उनके शिल्पांकन हुए हैं। उन्हें पूर्णेश्वरी के रुप में तथा वैष्णवी के रुप के शिल्पित किया गया है। बिहार के जयनगर से पूर्णेश्वरी की एक प्रतिमा मिली है, जो बारहवीं सदी में बनाई गई। यह पाल शासकों के समय की है तथा अभी विक्टोरिया एंड अल्बर्ट म्यूजियम लंदन में है। इसमें प्रसन्न भाव से अपनी गोद में शिशु को लिये चार हाथोंवाली पूर्णेश्वरी विराजी हैं। दसवीं सदी का ही एक शिल्प, जो कलचुरी काल का है तथा गुर्गी, मध्य प्रदेश में मिला है, अभी भोपाल संग्रहालय में है। इसमें लेटी हुई मुद्रा में माता यशोदा कृष्ण को स्तनपान करा रही हैं। माता और शिशु का एक रुप स्कंदमाता के रुप में भी उरेहा गया, यह ईसा की आरंभिक सदियों में हुआ। इन शिल्पों पर गांधार प्रभाव बड़ा स्पष्ट है। स्कंदमाता का एक सुंदर शिल्प, यह नस्ली (राजस्थान) से प्राप्त हुआ।

गजलक्ष्मी, पांडव और कृष्ण गोवर्धन

धरती माता की मुक्ति की कहानी विदिशा के पास उदयगिरि की गुफाओं में पूरी उत्कृष्टता के साथ अंकित है। गुप्तों के समकालीन दक्षिण-पश्चिम में राज्य कर रहे वाकाटक शासकों के समय में अजंता में मनोरम भित्ति चित्र बने, वहाँ चैत्य विहारों में बनाए गए शिल्प अद्भुत हैं। छह सौ ईसवी से आठ सौ पचास ईसवी के समय पल्लव शासकों ने भारत के दक्षिण-पूर्वी हिस्से में शानदार मंदिर बनवाए, जिनमें मामलापुरम के मंदिर विश्व प्रसिद्ध हैं। ग़ज़लक्ष्मी और पांडवों सहित कृष्ण गोवर्धन के शिल्प अद्भुत हैं।

दक्षिण भारत के पश्चिमी हिस्से में पाँच सौ पचास ईसवी से सात सौ पचास ईसवी के बीच सुंदर शिल्पांकन हुए, जिनमें एहोल के शिल्पांकन सुप्रसिद्ध हैं। बदामी की गुफाएँ भी इसी बीच तैयार हुई। यहाँ विष्णु-लक्ष्मी, शिव-पार्वती तथा काम और रति के युगल उकेरे गए। राष्ट्रकूटों के समय ईसवी सात सौ पचास से ईसवी नौ सौ पचहत्तर तक मनोरम शिल्पांकन हुए, जिनमें एलोरा के शिल्पांकन सुप्रसिद्ध हैं। यहाँ के कैलाश मंदिर में उत्कीर्ण रावण द्वारा कैलाश पर्वत को हिलाते हुए दृश्य का शिल्प विश्व प्रसिद्ध हैं। यहाँ रामायण के प्रसंग शिल्पित किए गए हैं, साथ ही भविष्य के मैत्रेय को भी शिल्पित किया गया है।

भारत में जब-जब भी स्त्रियों के उत्कीर्णन हुए, तब-तब शिल्पी ने उन्हें उरेहते समय उस वात्सल्य के भाव को जीवंत रखा, जो स्त्री का मूल भाव है। नायिका हो, अप्सरा हो अथवा शालभंजिका हो या अंबिका, इनको उरेहते समय वह मातृत्व भाव अपनी पूरी सौम्यता के साथ इनके चेहरों पर छलक आया है, जिस भाव के कारण भारतीय परंपरा स्त्री की पूजा करती है। शिल्पियों ने विशेष रुप से माता और शिशु के अंकनों के समय यह ध्यान भी दिया कि यह माता समृद्धि की देवी के रुप में परिलक्षित हो, इसलिए उनके हाथों में फल हैं या आम के फलों से लदी हुई डाली है। ऐसे शिल्पों का एक संदेश यह भी है कि यह माता केवल अपने शिशु की ही रक्षक नहीं है, बल्कि समस्त प्रकृति की भी रक्षक है और इसलिए वह एक हाथ से शिशु और दूसरे हाथ से इस डाली को या फल को थामे हुए है।

जैन परंपरा में माता और शिशु के अंकनों की एक स्थापित परंपरा है। इस परंपरा में शिशु को गोद में लिये उरेही गई माता को अंबिका कहा जाता है। सनातन परंपरा में भी अंबिका की आराधना होती है, किंतु उनकी गोद में शिशु नहीं होता।

जैन परंपरा में माता और शिशु के अंकनों की एक स्थापित परंपरा है। इस परंपरा में शिशु को गोद में लिये उरेही गई माता को अंबिका कहा जाता है। सनातन परंपरा में भी अंबिका की आराधना होती है, किंतु उनकी गोद में शिशु नहीं होता। अंबिका समूची मानवता की माँ के रुप में मान्य की गई हैं। माँ और शिशु के शिल्प के श्रेष्ठ उदाहरण धारिक, उसियां, मथुरा, एलोरा, देवगढ़, खजुराहो, दिलवाड़ा कुंभारिया और खंडगिरि में हैं।

जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया, माता और शिशु के अंकनों का मुख्य केंद्र मध्य भारत रहा। इस संबंध में एक रोचक संदर्भ मिलता है। चौथी शताब्दी में लिखे गए एक जैन ग्रंथ 'स्थानंग सूत्र' में पुंजभद्र नामक एक यक्षेंद्र का उल्लेख है, जिसकी चार अग्र महिषी थीं। 'भगवती सूत्र' नामक एक ग्रंथ के अनुसार मणिभद्र तथा पुंजभद्र नामक दो यक्षेंद्र थे तथा चार रानियों में से एक का नाम बाहुपुत्रिका था। बाहुपुत्रिका ने विशाला नगरी (संभवत: उज्जैन) में एक चैत्य विहार का निर्माण कराया था। जैन आगमों में यक्ष पूजा के जो उल्लेख मिलते हैं, उनमें मणिभद्र तथा पूर्णभद्र नामक यक्ष तथा बाहुपुत्रिका नामक यक्षी के विशेष उल्लेख हैं। इन यक्षों और यक्षियों की पूजा होती थी। यह पूजा अति प्राचीन थी और संभवत: इसी पूजा की परिणति जैन परंपरा में अंबिका तथा बौद्ध परंपरा में जंभाला तथा हारिती की पूजा में हुई। मणिभद्र की प्राचीनतम प्रतिमा पवाया से मिली है, जिसे प्राचीन समय में पद्मावती नगरी के नाम से जाना जाता था तथा जो आज ग्वालियर के निकट है। ग्वालियर के निकट जो पुरातात्विक अवशेष मिले हैं, उनसे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि यह क्षेत्र जैन अंबिका के शिल्प का एक बड़ा केंद्र तथा इन शिल्पों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि दसवीं शताब्दी और उसके परवर्ती समय में माता और शिशु के रुप में ऐसी अंबिका का निर्माण जैन परंपरा में हुआ, जिस पर एक ओर बौद्ध हारिती का प्रभाव था तो दूसरी ओर दुर्गा का। यदि दसवीं शताब्दी के पूर्व विचार करें तो बाहुपुत्रिका यक्षी के उस स्वरुप से अंबिका का उद्भव माना जा सकता है, जो मगध में अपने आरंभिक काल में जैन अनुयायियों के द्वारा पूजी जाती थी।

माता और शिशु के शिल्प, वे चाहे जिस धर्म के परिप्रेक्ष्य में उरेहे गए हों, उर्वरता और समृद्धि का संदेश देते हैं। अंबिका के कई नाम भी प्रचलित रहे, किंतु इनमें सर्वाधिक प्रचलित नाम अंबिका ही है। यह भी एक रोचक तथ्य है कि छठवीं शताब्दी ईसवी से नवीं शताब्दी तक अंबिका का उत्कीर्णन ऋषभनाथ, पार्श्वनाथ तथा नेमीनाथ के साथ हुआ, किंतु दसवीं शताब्दी के बाद उन्हें मुख्य रुप से दो या चार भुजाओं के साथ तीर्थंकर नेमीनाथ के साथ उरेहा गया। अंबिका का संबंध तंत्र से भी है। 'भैरव पद्मावती कल्प' नामक ग्रंथ में वे तांत्रिक वांड्मय' में उनके कई नाम दिए गए हैं, जिनमें शांकरी, मंत्ररुपा योगेश्वरी, यक्षेश्वरी आदि प्रमुख हैं।

अंबिका के उत्कीर्णन भिन्न-भिन्न स्वरुपों तथा भिन्न-भिन्न कालखंडों में हुए हैं। आरंभिक शिल्प तो कम उपलब्ध हैं, किंतु पश्चातवर्ती शिल्प बहुतायत से माता और शिशु के रुप में मिलते हैं तथा ये शिल्प किसी धर्म विशेष के शिल्प के रुप में नहीं रह जाते, बल्कि माता के स्वरुप की विशेषताओं का मानो आख्यान करने लगते हैं।

अंबिका के आरंभिक शिल्प छठवीं शताब्दी से मिलते हैं तथा सर्वाधिक प्राचीन शिल्प गुजरात में बड़ौदा के पास आकोट से मिला है। कर्नाटक के एहोल के मेगुती मंदिर में (ईसवी सन् 634 का) एक

शिल्प उत्खनन में मिला है। इसी काल का एक शिल्प राजस्थान से भी मिला है। नवीं से सोलहवीं शताब्दी के बीच माता व शिशु के शिल्प गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश से मिले हैं। सोलहवीं शताब्दी के अंबिका के शिल्प पालीताना के मंदिरों में बड़े भावप्रवण ढंग से उरेहे गए हैं। नवीं से सोलहवीं शताब्दी के बीच बिहार, बंगाल तथा उड़ीसा में बहुतायत से माता व शिशु के शिल्प निर्मित किए गए। इसी अवधि में दक्षिण भारत में ये शिल्प बहुत बने। अरकोट, बेलगाम, हुबली, सेडम, मूदबिदरी, नेल्लौर तथा गुलबर्ग जिले के अनेक स्थानों से ऐसे शिल्प मिले हैं।

खजुराहो की मातृ नायिकाओं के हाथों में कमल भी है तथा आम के वृक्ष की डाली भी। इन शिल्पों की लयात्मकता तथा उनके चेहरे पर बिखरता लावण्ययुक्त स्मित इतना मनोरम है कि उनके सामने से हटने का मन नहीं करता। उनके अलंकरण भी बड़े मनोहारी हैं। खजुराहो के आदिनाथ मंदिर में चार भुजा स्वरुपा अंबिका के चार उत्कीर्णन हैं। खजुराहो की यह मातृका माता के सच्चे स्वरुप की प्रतिनिधि है।

मध्य प्रदेश में ये शिल्प खजुराहो के अलावा पवाया, नरसिंहपुर, चंदेरी, कारीतलाई, विदिशा, जबलपुर, उज्जैन, सतना, धुबेला, हिंगलाजगढ़, टीकमगढ़, सिंहपुर आदि स्थानों से प्राप्त हुए हैं। इनमें खजुराहो के उत्कीर्णन सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। इन शिल्पों का निर्माण 950 ईसवी से बारहवीं सदी के बीच हुआ। खजुराहो में यक्षी, अंबिका, पद्मावती और शालभंजिका के सुंदर अंकन उपलब्ध हैं। अपनी गोद में एक ओर शिशु को धारित किए, सिंह की सवारी करती और चेहरे पर वात्सल्य की वर्षा करती खजुराहो की नायिका का यह रुप अद्‌भुत है। खजुराहो के जैन मंदिरों में, विशेष रुप से पार्श्वनाथ मंदिर के दक्षिणी हिस्से में चार भुजा स्वरुपा माता का अद्‌भुत रुप दिखाई देता है। खजुराहो की मातृ नायिकाओं के हाथों में कमल भी हैं तथा आम के वृक्ष की डाली भी। इन शिल्पों की लयात्मकता तथा उनके चेहरे पर बिखरता लावण्ययुक्त स्मित इतना मनोरम है कि उनके सामने से हटने का मन नहीं करता। उनके अलंकरण भी बड़े मनोहारी हैं। खजुराहो के आदिनाथ मंदिर में चार भुजा स्वरुपा अंबिका के चार उत्कीर्णन हैं। खजुराहो की यह मातृका माता के सच्चे स्वरुप की प्रतिनिधि है। सतना के पास से मिली मातृका को तेईस यक्षियों के साथ देखा जा सकता है।

हिंगलाजगढ़ से जो माता और शिशु के शिल्प मिले हैं, वे दसवीं शताब्दी के हैं। इनमें मातृका को त्रिभंगी मुद्रा में दर्शाया गया है।

मातृत्व की अवधारणा को केंद्र में रखकर भारत में पूर्व से पश्चिम तक तथा उत्तर से दक्षिण तक बहुतायत में शिल्प उत्कीर्णन हुए। यह अवधारणा यदि शिल्पी की छेनी से गोलपाड़ा असम में अभिव्यक्त हुई, तो गुजरात के कुंभारिया से लेकर दक्षिण के एहोल तक में ये शिल्प बने। ऐसे में प्रत्येक शिल्प के संबंध में विवरण देना अत्यंत वृहद कार्य है।

भारत में मुसलमानों के आगमन के पश्चात मातृत्व की अवधारणा के इस अंकन पर प्रायः विराम लग गया, किंतु पालीताना जैसे स्थानों में ये उत्कीर्णन सोलहवीं सदी में भी पूरी भव्यता के साथ किए गए।

आधुनिक युग में भी सुदूर केरल के कन्नूर में मशहूर शिल्पी कन्हाई कूंचीरमन के द्वारा निर्मित एक भव्य माता और शिशु का शिल्प मौजूद है। दिनांक 28 फरवरी, 1978 को भारत के सर्वोच्च न्यायालय के प्रांगण में 210 सेमी. ऊँचा काले कांसे का माता और शिशु का सांकेतिक शिल्प स्थापित किया गया, इसमें स्त्री के रुप में भारत माता को दर्शाया गया है, जो भारतीय गणतंत्र के शिशु को अपनी गोद में लिये हुए हैं, जिसके हाथ में कानून की खुली पुस्तक दर्शाई गई है। मातृत्व की यह अवधारणा अमर है। जब तक सृष्टि है, तब तक सृजन है, और इस सृजन की स्रोतस्विनी माता है, जो समृद्धि और उर्वरता की प्रतीक है।

वात्सल्य रस को यदि काव्य में प्रतिष्ठित करने वाले शब्द शिल्पी सूर हैं तो इस रस को छेनियों के माध्यम से पाषाणों में शिल्पित करने वाले ऐसे अनेकों अनाम शिल्पी हैं, जिनके कृतित्व के दर्शन कर आज भी हम स्वयं को कृतार्थ कर लेते हैं।

ललित

अमरता भूलोक का नियम नहीं। यहाँ परिवर्तन ही चिरंतन है। यहाँ ''स्वागत के ही साथ बिदा की होती देखी तैयारी।'' इसलिए उदासी को त्यागकर ठंड को खुशी-खुशी विदा देते हुए बसन्त को पूरे मन से भोगने में ही जीवन की पहचान है। बसन्त आ गया है- रूखी, पददलित, पदमर्दित वनस्पति को नया आकाश, नयी माटी देने के लिए। बसन्त का सान्निध्य पाकर अब ''रूखी री यह डाल, वसन वासन्ती लेगी।''

यह डाल वसन वासंती

श्रीराम परिहार

आकाश की शाख से साँझ का सतरंगी पंख फैलाकर धीरे-धीरे उतरना। खेतों की उजाड़ बस्ती में बसे गेहूँ के इक्के-दुक्के परिवार। अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ मिट्टी से उठा चने का ठिगना व्यक्तित्व। तन्वंगी छोकरियों जैसी हल्के भूरे रंग वाली मसूर की टोली। खेत के द्वार पर बैठी समय की चाल को पहचानती हुई अलसी की नीलवर्णी आँखें। गाँव-बस्ती की खपरैल पर बहुत आहिस्ता उतरता हुआ अंधियारा।

ऋतु-धर्मी धरती के देश में मौसम के घर नियमानुसार उत्सव मनाया जाता रहा है। ऋतुओं का रंग अपने-अपने ढंग से धरती को भिगोता रहता है। पावस के घर जन्मी और शरद के आँगन में संस्कार प्राप्त बाल प्रकृति शिशिर की चौगान तक आते-आते कच्ची कुँआरी किशोरी बन जाती है। शिशिर का स्वभाव ठंडा, शीतल और रसधर्मी है। शरद की स्वच्छ, निर्मल, कंचनवर्णी देह पर शिशिर पर गहरा हरा रंग चढ़ने लगता हैं यह काल प्रकृति के भराव का है। जब सम्पूर्ण वातावरण में ठंडक का जमाव होने लगता है, शीतलता की मोटी परत पत्र-पत्र पर आकर ठहर जाती है, तब वसुधा का हृदय पिघलता है। उसकी छाती का दूध भर जाता है- गेहूँ के गदराए दानों में, गनगना उठे चनों में, सरसों की कुसुम्भी चोली में। गेहूँ के ये खेत श्रृंगार के गीत लिखने लगते हैं। प्रकृति यौवन की देहलीज़ पर आकर ठहर जाती है। उसका यौवन वसन्त में आकर पूर्णता पाता है, लेकिन वासन्ती अनुभूतियों की आँख मिचौनी वह शिशिर से ही आरम्भ कर देती है। प्रकृति के पोर-पोर में यह अनुभूति धीरे-धीरे प्रवेशती है। तभी तो गेहूँ, चना, सरसों से लेकर सन्तरा, नींबू, नारंगी और अंगूर तक आपादमस्तक गदबदा उठते हैं। यह जो रास्ते के किनारे बेहयाई से फड़फड़ा कर फूला हुआ पलाश है न, उसे भी जीवनी-शक्ति शिशिर के घर से ही प्राप्त हुई है। तभी तो मदन-सखा के साथ खिलखिलाकर हँस रहा है।

शिशिर के प्राणवान हाथों में पड़कर निराकार साकार हो जाता है। सब कहीं बदलाव की प्रक्रिया चलती है, जिसका अन्त किसी ठोस को जन्म देता है। हिमालय के श्रृंगों पर शिशिर पर नर्तन होने लगता है। यह तांडव न होकर लास्य होता है। लास्य नृत्य आदि-शक्ति पार्वती का है, जिसमें मधुरता है, जीवन-संगीत है।

जन्म-मृत्यु के किनारों को छूती हुई जीवन की लय है। सृजन जिसकी विशेषता है। शिशिर की प्रकृति सृजनधर्मी है। उसके गीतों में हिमालय की गंध और गंगा का संगीत है। वह ग्रीष्म के रूखेपन, सूखेपन और कठोरता से परिचित है। गंगा की धारा क्षीण न हो जाए, जन-जन के मन में बसी गंगा कहीं तन्वंगी न हो जाए इसीलिए वह हिमालय के खेतों में पानी को बर्फ के रुप में वो देता है। समूचे वातावरण में आर्द्रता भरी ठंडक रिसने लगती है। वनस्थली मौसम के इस काव्य को अंजुरी भर-भर पीती है और मन्द्राकान्ता छन्द-सी प्रतीत होने लगती है।

शिशिर ऋतु जब प्रकृति की काव्य रचना करती है तो संपूर्ण ब्रह्माण वीर रस से सराबोर हो जाता है। गेहूँ की लचकदार देह, लरजती अंगूरी लता, अलसी की नीली चुनरिया, लहलह धनिया, महमह पालक पर उत्साह का नर्तन प्रारम्भ हो जाता है। वीर और श्रृंगार रस का सम्बन्ध युगों पुराना है। श्रृंगार प्रधान काव्य वसन्त का है। शिशिर के बाद ही वसन्त का आगमन होता है। उत्साह ही श्रृंगार को पूरी तरह आत्मसात् कर सकता है। यही कारण है कि प्राचीन कवियों ने अपने चरित नायकों को दोनों ही भावों में परम और चरम चित्रित किया है। लेकिन शिशिर का उत्साह सृजनधर्मी और ऊर्ध्वगामी है। विध्वंसक नहीं। यह जड़ को चेतन तक ले जाने की यात्रा है। अन्तर की शक्ति से बाहर के रंग रूप को भींग देने की ललक है। शिशिर और वसन्त दोनों का राग उत्साह और श्रृंगार से ध्वनित है। शिशिर की उत्साही किशोरी प्रकृति बसन्त में यौवना बन जाती है। भीतर का उत्साह अंग-अंग का श्रृंगार बन जाता है।

डाल-डाल बसन्त के लिए झूला बन गई। पत्ते बिछौना बन गये और बहुत सुबह गुलाब चटकारी देकर शाहजादे बसन्त को जगाने लगता है- ''मदन महीप जू को बालक बसन्त, ताहि/प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दे।''

प्रकृति जब श्रृंगार करती है तब पूरी ईमानदारी के साथ करती है। बसन्त-पर्व में सम्मिलित होने के लिए हर सदस्य सजता-सँवरता है। नये पत्र-पुष्प धारण करने से पूर्व प्रत्येक वृक्ष नग्नता का वरण करता है। वृक्षों के पत्ते धीरे-धीरे पियरा गये और भूमि चूमने लगे हैं। टेसू ने अपनी छोटी-छोटी, नरम-नरम, श्यामल-श्यामल अंगुलियाँ निकाल ली हैं। आम्र-मंजरियाँ झाँकने लगी हैं। सेमल पूरी तरह निर्वसन होकर अपने फूल की सुन्दरता और फल की निस्सारता पर आकाश से विचार-विमर्श कर रहा है। अमुआ की कोयल कूकने लगी है। ये सब शिशिर को विदा देने तथा आगत का स्वागत करने आ जुटे हैं। यह सन्धि-काल है। शिशिर जा रहा है- अपनी भूमि बसन्त को सौंपकर। बसन्त आ रहा है- नयी आशा, नयी उमंग, नया तन, नया

भूरी बाई

मन, नया रंग, नया ढंग लेकर। इस सन्धि-वेला में प्रकृति लजाती, ठिठकती, कभी उन्मुक्त होती, हँसी को मुस्कान बनाती रूपहली पगडंडियों पर बढ़ रही है। प्रकृति के शैशव की कोर-कोर में यौवन प्रवेश लेने लगा है। यौवन ने हठपूर्वक शैशव को दबा दिया है। बसन्त यौवन के कानों में कुछ कह रहा है।

जंगल के समाज में किसुंक कैसा दूल्हा बनकर खड़ा है और यह सेमल, यह तो सचमुच दूल्हे के पिता जैसा लग रहा है। उधर सरसों धानी चुनरिया पहने सजी-धजी खेत-खेत उछल-कूद मचा रही है। चना पैरों में घुंघरू बांधकर धुम्मरदार नाच रहा है। आम का रोम-रोम गा उठा है। महुआ गदबदाकर समूचे वातावरण में मादकता भरने लगा है। डफली और मृदंग पर थापें पड़ने लगी हैं। नृत्यमय पैर थिरकने लगे हैं। धरती ने प्रीत के रंग से आकाश की शून्यता को भर दिया है। गगन-मंडल में विविधवर्णी चित्र उभर आये हैं। धरती की प्रीत सुहागन बन गई। कामदेव के पुत्र बसन्त के जन्म से चहुँ ओर जिजीविषा के प्रति अटूट आस्था उमड़ पड़ी है। प्रकृति छायावादी बन गई है। केकी-कीर बसन्त से बातें करने आ गये। कोयल मीठी-मीठी लोरी गा रही है। जिस पालने में बसन्त सोया है, उसे दखिन पवन आकर बार-बार हिला जाता है। डाल-डाल बसन्त के लिए झूला बन गई। पत्ते बिछौना बन गये और बहुत सुबह गुलाब चटकारी देकर शाहजादे बसन्त को जगाने लगता है- ''मदन महीप जू को बालक बसन्त, ताहि/प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दे।''

धरती के घर आज उत्सव मनाया जा रहा है। ''यह बसन्त सबकर तेवहारू'' बनकर आया है। इन त्यौहारों और ऋतु-पर्वों के माध्यम से हम अपने अतीत को टोहते हैं। अपने संस्कारों को जीते हैं। अपने आधार का स्मरण करते हैं।

सोचता हूँ, शिशिर को बिदा देने हेतु आज सहस भाव से वनस्पति फूल उठी है। मधुकर गीत गा रहे हैं। मालती संवर गई है। मैं उदासी महसूसता हूँ। लेकिन मेरा उदास होना व्यर्थ है। आना-जाना शाश्वत है। ऋतु-चक्र, सृष्टिक्रम का संकेत देता चलता है। अमरता भूलोक का नियम नहीं। यहाँ परिवर्तन ही चिरंतन है। यहाँ ''स्वागत के ही साथ बिदा की होती देखी तैयारी।'' इसलिए उदासी को त्यागकर ठंड को खुशी-खुशी विदा देते हुए बसन्त को पूरे मन से भोगने में ही जीवन की पहचान है।

बसन्त आ गया है- रूखी, पददलित, पदमर्दित वनस्पति को नया आकाश, नयी माटी देने के लिए। बसन्त का सान्निध्य पाकर अब ''रूखी री यह डाल, वसन वासन्ती लेगी।''

छंद डोर में स्वर माला सी

लता मंगेशकर का जाना बसंत का चला जाना है या सरस्वती का। वसंत पंचमी के ठीक बाद उनका जाना ऐसी ही अनुभूति देता है। वे जहाँ गईं हैं, उस देवलोक की दुनिया अवश्य ही श्रुतिमधुर हो गयी होगी। आख़िरकार उस नंदनकानन की कोकिला लौट जो आई, किन्तु पृथ्वी स्वर-स्वर्गोद्यान के इस टुकड़े से वंचित हो गई।
पैमाने अगर आसमान, समंदर और हिमालय सा शिखर हो तो लफ़्ज़ों में लता मंगेशकर जैसी किंवदंती पर कुछ कहना आसान नहीं, लेकिन उनकी जिस्मानी मौत पर यदि करोड़ों रुहें उन्हें याद करते हुए बिलखती हों तब श्रद्धा में माथा तो झुकाया जा सकता है। इस सुर साम्राज्ञी का हासिल वो करोड़ों प्रशंसक हैं, जिनकी आत्मा का रस-भाव इस कंठ में छलकता रहा। जाने कितनी खुशियाँ... टूटने-बिखरने के जाने कितने सिलसिले और विराट को मनुहारती कितनी ही मनोरम अनुगूँजें...! यूँ हज़ारों गीत लता का कंठहार बने। उनका लेखा-जोखा लेकर बैठें तो जीवन ही कम है लेकिन रत्नगर्भा भारत की मिट्टी धन्य है जहाँ प्रतिभाएँ किसी दिव्य चेतना की तरह अपना उजाला बिखेरती हैं और समय के पार अपनी अमरता का उद्घोष करती हैं। लता मंगेशकर स्वर की ऐसी ही शाश्वत अमृत धारा हैं। *'रंग संवाद' हमारे संगीत समय की इस अनन्य गायिका के प्रति आंतरिक श्रद्धांजलि व्यक्त करता है।*

लोरी से रुदाली तक

अजय बोकिल

देह रुप में सुर साम्राज्ञी लता मंगेशकर के परलोकगमन के बाद एक सवाल सतत मन में कौंधता रहा है कि लताजी को किन शब्दों में पारिभाषित करें? कैसे डिकोड करें? लता होने के मायने क्या हैं और जिस सदी में उनकी सुर लीला सजी, उसके बाद आने वाली सदियों की पीढ़ियों के लिए लता मंगेशकर का क्या अर्थ होगा?

ये सवाल इसलिए क्योंकि बात केवल सुस्वरा होने की नहीं है, परफेक्शनिस्ट होने की भी नहीं है और कला की धर्म और मर्म ध्वजा लहराने की तो बिल्कुल भी नहीं है। बात जहाँ से तमाम मानदंडों की फिनिश लाइन खत्म होती है, वहाँ से शुरु होने की और पराकाष्ठा के शिखरों को वामन बना देने की ताकत की है। मुझ जैसे लोगों को, जिनका जन्म सिने पार्श्व गायन में लताजी के प्रसिद्धी की लहरो पर सवारी करने के दशक में हुआ, उनके लिए लता के सुर लोरी से लेकर मंगलाष्टक तक और प्रेमगीत से लेकर रूदाली तक सब कुछ रहे हैं। बचपन में जैसे ही कुछ होश आया तो हवाओं में जो आवाज़ें रेडियो के माध्यम से कानों में बार-बार पड़ती थीं, उनमें से प्रमुख स्त्री स्वर लता मंगेशकर का ही था। तब तक न तो फ़िल्मों के बारे में ज्यादा कुछ पता था और न ही यह मालूम था कि पर्दे पर दिखने वाली हिरोइनें केवल होंठ हिलाती हैं, आवाज़ तो किसी दूसरे की होती है। ऐसी आवाज़ को परकाया प्रवेश का जादू जानती थी तथा पर्दे पर दिखने वाले चरित्र को और परिपूर्ण एवं जानदार बना देती थी। जीवन हर भाव को अभिव्यक्त करते उन सुरों को सुनने से लगता था कि वो कहीं अनंत से आते हैं, अनंत में ले जाने के लिए।

संयोग से मेरा ननिहाल भी इंदौर के सिख मोहल्ले के उसी तीर्थ स्थली के ठीक सामने था, जिसके बारे में मेरे नानाजी बताया करते थे कि अरे, लता का जन्म इसी सामने वाले मकान में हुआ था। हालांकि वो खुद लता के बारे में बहुत ज़्यादा नहीं जानते थे, क्योंकि अपने जीवन में उन्होंने फ़िल्में बहुत कम देखी थीं। लेकिन घर में जब भी रेडियो बजता था तो उस पर हर दूसरे-तीसरे गाने में लता का नाम आना उन्हें रोमांचित जरुर करता था। अपनी किसी समकालीन हस्ती के बारे में हमारा मनोभाव अक्सर समालोचना से भरा होता है। बीती सदी के साठ सत्तर के दशक में घरों में, चौराहों पर यह बहस आम थी कि दो महान पार्श्व गायिकाओं में से कौन बेहतर गाता है लता या उनकी बहन आशा? कौन ज़्यादा वर्सेटाइल है, लता या आशा? कौन दिल की गहराइयों में ज्यादा उतरता है, लता या आशा? कौन देह से और कौन आत्मा से गाता है, लता या आशा? किसका सुर अलौकिक है, लता का या आशा का? किसका जीवन गंगा की तरह पवित्र है लता का या आशा का? किसने जीवन को नया अर्थ दिया और किसके लिए जीवन का अर्थ केवल ऐहिक उपलब्धियों का संघर्ष है, लता या आशा? यह कहना ग़ैर जरुरी है कि ये सवाल लताजी और आशाजी के बाद भी उतने ही अनुत्तरित रहेंगे, जितने कि आज हैं।

तो फिर लता की महानता किसमें है, किन बातों और किन तकाजों से है? क्योंकि शुद्ध गायकी की बात की जाए तो लता से भी बड़ी गायिकाएँ हमारे यहाँ रही हैं, लेकिन वो क्लासिकल के क्षेत्र में। इसमें शक नहीं कि फ़िल्मी पार्श्व गायन की दुनिया में लता की तथाकथित 'पतली' आवाज़ जब से खिलने लगती है, लगभग तभी से भारतीय ि़फ़ल्म जगत में पार्श्व गायन का स्वर्णिम युग भी शुरु होता है। उसे स्वतंत्र पहचान और तमाम भारतीयों की ज़िंदगी को नई रवानी मिलती है। लता के साथ मोहम्मद रफी, मुकेश, मन्ना डे, किशोर कुमार जैसे पुरुष स्वर उस युग को नई आभा प्रदान करते हैं तो लता के सुरों की धार उनकी समकालीन स्त्री स्वरों जैसे नूरजहां, शमशाद बेगम, गीता दत्त आदि को पीछे छोड़ते हुए तीर की तरह आगे निकलती जाती है। इसकी वजह केवल लता से गवाने का दबाव भर नहीं था, बल्कि वो चमत्कार था कि लता अपने सप्तसुरों में नवरसों की परिपूर्णता लेकर प्रकट होती है और पूरे विश्व को रसों की इस स्वरगंगा में डुबोती चली जाती है। जरा सोचिए और अपने मन से पूछिए कि जीवन के किस भाव, किस रस और किस आलोड़न में लता हमारे साथ नहीं होतीं? वात्सल्य हो, प्रेम हो। राग हो विराग हो। मां, बेटी या बहू हो, बहन हो या पत्नी हो। करुणा हो, आराधना हो। अनुनय हो, वीरत्व हो, प्रेमिका हो, संन्यासिनी हो। दुख हो या सुख हो। रात हो या दिन हो। बहार हो या खिज़ां हो। भगवद् भक्ति हो या राष्ट्र भक्ति हो। लता के सुर उसी भाव से एकाकार होकर अवतरित होते हैं और सीधे आत्मा से जा भिड़ते हैं।

लता, लता इसलिए भी हैं, क्योंकि दुष्प्रवृत्तियों को ख़ारिज करती चलती है। जैसे कि क्रूरता, दुष्टता, अनैतिकता, अश्लीलता और अनाचार के भाव लता के स्वरलोक में चुपके से भी प्रविष्ट होने की हिम्मत नहीं करते। लता सुरों की आराधना के साथ साथ जीवन में कल्याणकारी और मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने वाले मूल्यों का अनहद राग भी रचती जाती हैं। वो मानवीय मूल्यों की गायिका हैं। निष्काम प्रेम और समर्पण की गायिका हैं। लता स्वयं को अपूर्ण मानकर पूर्णता के लिए प्रयत्नों की पराकाष्ठा का दूसरा नाम हैं। वो गायन के साथ तो सौ फीसदी न्याय करती ही हैं, शब्दों की अर्थवत्ता को संपूर्णता भी प्रदान करती हैं। ऐसी संपूर्णता, जिसके आगे शायद आप सोच भी न पाएं। लिहाजा ऐसे गीतो की लंबी लिस्ट है, जो महज गीत नहीं हैं बल्कि हमारी सांस्कृतिक

विरासत का स्थायी हिस्सा बन चुके हैं। याद करें लताजी के गाए अमर गीत 'लग जा गले से' की दूसरी पंक्ति 'शायद इस जनम में मुलाकात हो न हो' में 'शायद' शब्द का अद्भुत उच्चारण। शायद शब्द के बाद दिया गया पॉज जीवन की क्षण भंगुरता को पूरी ताकत से प्रकट करता है। इसी तरह 'मुगले आज़म' के गीत 'जब प्यार किया तो डरना क्या?' में लताजी प्रेम की निडरता का उद्घोष है, जिसे मधुबाला के अभिनय ने अमर कर दिया। लताजी हर भाव को मानो उसकी पूर्णता में व्यक्त कर सकती थीं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि लता के दस श्रेष्ठ गीतो का निर्विवाद चयन आकाश के तारों की सही संख्या बताने जितना दुष्कर है। किस भाव को छोड़ें और किस रस को अलग करें।

लता मंगेशकर को गान सरस्वती कहा जाता है। यानी वो ज्ञान और कला की देवी सरस्वती का लौकिक स्वर हैं। हम सरस्वती की प्रतिमा की पूजा करते हैं, लेकिन हम नहीं जानते कि देवी सरस्वती साक्षात कैसे गाती, बोलती होंगी। लेकिन लता के आविर्भाव से बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जन्मे लोग शायद इस प्रश्न का उत्तर खोजने से बच गए।

महान संगीतकार अनिल विश्वास ने एक बार कहा था कि लता और आशा के गायन में बुनियादी फ़र्क यह है? कि लता आत्मा से गाती है और आशा देह से। दूसरे शब्दों में कहें तो आशा गायन को जिस कठिन मोड़ पर लाकर छोड़ती हैं, लता वहीं से उठाकर उसे आकाश गंगा से एकाकार कर देती हैं। इसीलिए लता का होना केवल एक हाड़-मांस की कोकिल कंठी होना भर नहीं है। लता होना उससे कहीं बहुत ज्यादा है। अगर हम लता को कोकिल कंठी कहते हैं तो कोकिलाओं के स्वर लोक में लता को क्या कहा जाएगा लता कंठी कोकिल? जाहिर है कि लता होना सुर संधान की पराकाष्ठा ही नहीं है, उस साधना को आचरण से प्रकाशित करना भी है। जीवन मूल्यों को कला के उच्च्च आदर्श में बदलना भी है। उन्हें और उदात्त बनाना है। मानवीयता को दिव्यता में तब्दील करना है। लताजी को उनका कंठ ही अलौकिक नहीं बनाता, उसूलों भरा जीवन जीना भी अलौकिक बनाता है। लिहाज़ा महान गायिका होना उतना कठिन नहीं है, जितना कि महान गायिका के साथ-साथ महान लता मंगेशकर होना। उन मूल्यों के साथ जीना, जो व्यक्ति को अन्यतम बनाते हैं। उस समर्पण के साथ कला साधना करना, जिससे कला सीधे आत्मा के साथ संवाद करने लगती है। उन सुरों को साधना, जिनसे करोड़ो मन एकाकार हो जाते हैं। स्वर के माध्यम से वो भाव जगाना, जो सबको अपने ह्रदय के भाव लगने लगते हैं। वो रस पैदा करना, जिससे पूरी दुनिया समरस हो सके।

लता गुणों, मूल्यों, संकल्प, जिजीविषा, संघर्ष, विनम्रता और परफेक्शनिज्म का ऐहिक होते हुए भी एक अद्भुत और पारलौकिक संगम है। लोकप्रिय संगीत की दुनिया में शायद न तो पहले हुआ होगा और न ही आगे होगा। अगर आप मीरा की भक्ति, सीता का समर्पण, राधा का प्रेम, रानी लक्ष्मीबाई की वीरता, अहिल्या बाई सी संकल्प शक्ति को मिलाकर कोई एक प्रतिमा गढ़ना चाहें तो लता मंगेशकर ही होगी। शाश्वत स्वर लहरियों पर सवार ऐसी लता मंगेशकर दैहिक रुप में भले हमारे साथ अब न हो, अनुभूति के स्तर पर कई पीढ़ियों तक साथ रहेंगी, भरोसा है।

ज़िंदगी के दरीचों पर फैली आवाज़

मनोज श्रीवास्तव

ईश्वर का कहना होगा कि हमने उसे इतनी अवधि के लिए तो भेजा। लेकिन वह भी जानता है कि यह तथाकथित दीर्घायुष्य उसकी कालगणना का एक निमिष मात्र भी नहीं। वह लय अब विलय हो गई। पाक्किआरोट्टी ने कभी कहा था कि गाना वही जानता है, जिसे मालूम है कि साँस कैसे लेनी है और उच्चारण कैसे करना है। लता मंगेशकर की साँस अब जब थम चुकी है, हमें उनके वे सारे गीत याद आ रहे हैं जो इस देश की प्राणवायु बन गये थे।

वे एक पॉपुलर कल्चर की नश्वरताओं के बीच अमरता का अहसास कराने वाला माधुर्य थीं। धीरे-धीरे उस मुंबई की मेलडी का स्थान बहुत सी उत्पाती उच्छृंखलताओं ने ले लिया था। धीरे-धीरे संगीत की इस देवी को जैसे नई प्रासंगिकताओं ने किनारे कर दिया था या उन्होंने एक गहरी उदासी के साथ स्वयं किनारा कर लिया था। जब उन्हें नये जमाने की हक़ीक़तों का पता लगा, हमारे संगीत का दुःस्वप्न-युग शुरु हुआ।

भारत ने उन्हें रत्न मानकर अपनी अँगूठी पर सजाया हो, पर उनके स्वर में यह देश धड़कता था। जब हम लोग उड़ नहीं पाते थे, उनके गीत हमारे लिए पंख बन जाते थे। उनकी आवाज़ के उजाले अनगिनत भारतीयों की ज़िंदगी के दरीचों पर फैले रहते थे। हम उनकी मृत्यु को नहीं रोक पाए, लेकिन पता नहीं कितनी बार उन्हें सुनते हुए ऐसा लगा जैसे मौत के भी क़दम रुक गये होंगे जिसे वह लेने आई, उस वक़्त वह लता जी को सुन रहा हो।

जब वे 'ऐ मेरे वतन के लोगों' कहकर सम्बोधित करतीं थीं तो ऐसा लगता था जैसे इस वतन पर उन्हीं का स्वत्व है। वे इस वतन की ओर से साधिकार बोल रहीं हैं। जब वे लगभग फुसफुसाती-सी थीं- कुछ ऐसी भी बातें होती हैं- तो लगता था पौधों पर रात भर गिरती रही ओस जैसे अभी अभी ढुलक गई हो। जब वे कहती थीं कि 'रहें न रहें हम महका करेंगे' तो वे अपने हर श्रोता को उसकी आसन्न अमरता का विश्वास-सा दिलातीं थीं। सबके भीतर अमरता की वह महक भर जाने वाली लता आज जब स्वयं अमर हो गईं हैं तो मुझे स्वर की इस महादेवी के लिए महादेवी वर्मा के शब्द पता नहीं क्यों याद आ रहे हैं- ''क्या अमरों का लोक मिलेगा/ तेरी करुणा का उपहार/रहने दो हे देव! अरे/यह मेरे मिटने का अधिकार!

हमारी फ़िल्मी दुनिया में स्वर की मौलिकता से पता नहीं क्यों एक प्रारंभिक असहमति-सी रहती है। इसीलिए चाहे मुकेश हों या रफ़ी, सभी ने शुरु में केएल सहगल की तरह गाया और लता को भी शुरु में नूरजहाँ की तरह गाना पड़ा। सफलता मगर तभी मिली जब गायक या गायिका ने अपनी आवाज़ पर भरोसा करना शुरु किया। लता के साथ भी यही हुआ। क्यों न होता जब वे कह चुकीं थीं- 'मेरी आवाज़ ही पहचान है।' ...उन्होंने एक शर्त भी लगाई थी- 'ग़र याद रहे।' याद तो वे रहेंगी ही। हमेशा हमेशा।

वे जीवन के गहरे संतोष से भरी रहीं। एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा था- ''आज मुझे लगता है कि हे प्रभु! तुमने जो भी दिया, बहुत दिया दूसरों से कहीं ज़्यादा दिया। कृपा की जैसी छाँह मुझे दी है, वैसी ही हर कलाकार और नेक इंसान के ऊपर भी रखना''।

वाकई लता जी को वो सब मिला जिसकी वे हकदार थीं। 2001 में सर्वोच्च नागरिक अलंकरण भारत रत्न से लेकर पद्मविभूषण और सिनेमा के इलाक़े से जुड़े दादा साहब फालके सहित सैंकड़ों सम्मान और उपलब्धियाँ। उनका मानना था कि सम्पूर्णता आतंरिक भाव है, जो किसी भी पुरस्कार या परिस्थिति से जन्म नहीं लेता। वह भीतर से आता है। आपकी अपनी शक्ति और विश्वास भी उसमें सहायक होते हैं।

जीवन भर गाते रहने के बाद भी लता जी को यह लगता रहा कि कुछ बाक़ी है जो स्वर में ना आ सका। वो क्या था? समीक्षक अजात शत्रु ने जब एक दफा यह सवाल किया था तो लता जी का जवाब था- 'ख़ामोशी'। अनहद के आसमान में उड़ चली सुर की इस सोन चिरैय्या के लिए अब अपनी ख़ामोशी को गाना बहुत आसान होगा लेकिन दुर्भाग्य कि हम उसे सुन न सकेंगे।

प्रणाम

पंडित बिरजू महाराज
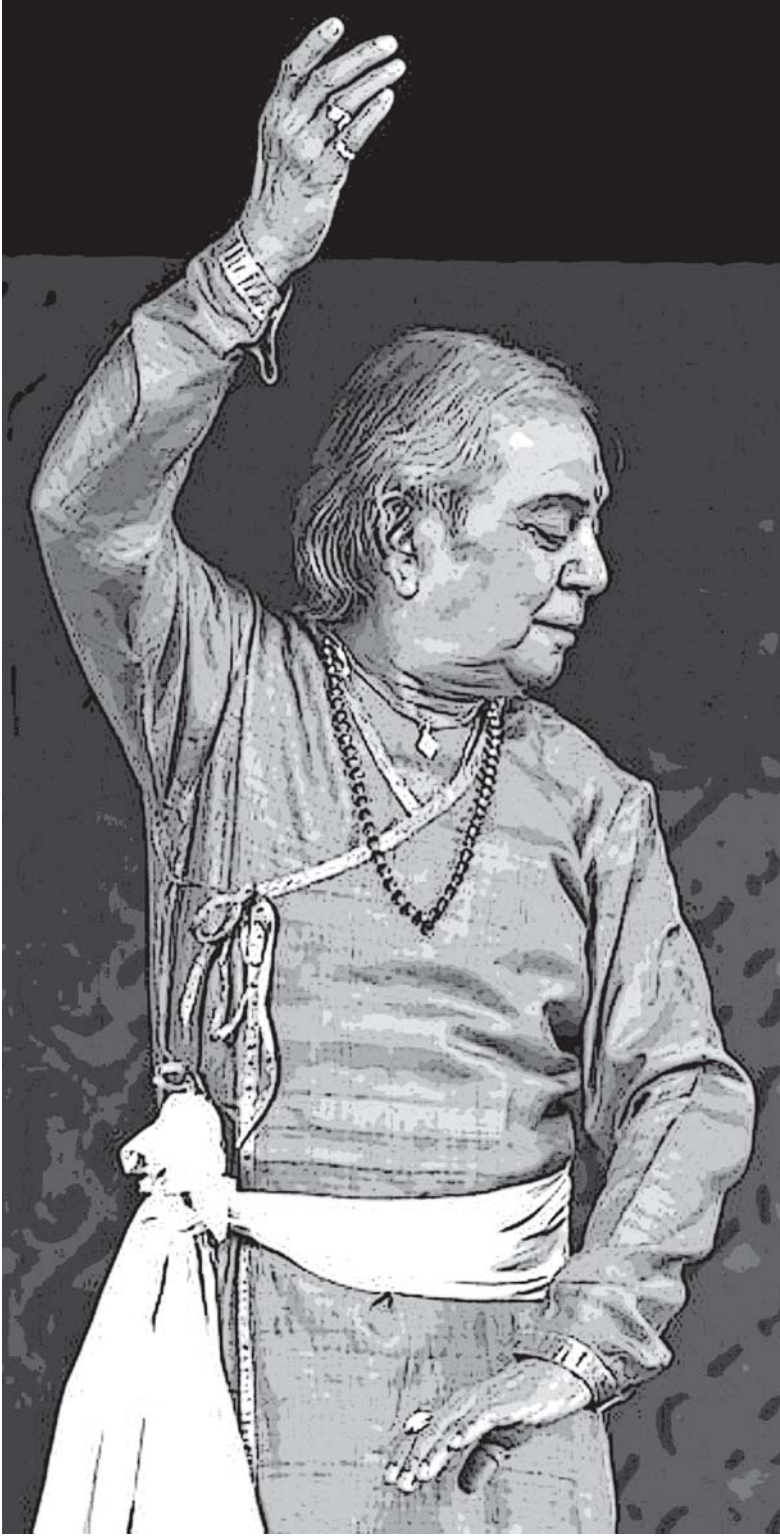
बीती चार फरवरी को वे चौरासी के हो जाते। लेकिन नियति को यह नामंजूर था सो हंसा अकेला अनंत में उड़ गया। घुंघरु ख़ामोश हो गये। नृत्य की सांसें थम गयीं। लय-लालित्य का चितेरा अबकी मधुमास न देख सका। कला की क़ायनात में कथक का सतरंगी केनवास रचने वाले महाराजा का महाप्रयाण निश्चय ही एक सुनहरे अध्याय का समापन है। जिन्हें कथक के बारे में कुछ भी नहीं पता वे भी कथक के बारे में इतना तो जानते ही हैं कि पं. बिरजू महाराज बड़े कथककार रहे हैं। इनके बारे में 'थे' लिखना बड़ी कशमकश में डाल रहा है। जो लोग अमर हो जाते हैं, उनके बारे में इतिहास की किसी बीती घटना की तरह कैसे लिखा जा सकता है!

स्वरांगी साने

लय के अवतार

कथक के इतिहास को पंडितजी ने अलग मुकाम पर पहुँचा दिया था, ऐसा मुकाम जिसमें कथक का 'क' भी न जानने वाला, यह जानने लगा है कि नृत्य की यह एक शास्त्रीय विधा है। कथक के जिस स्वरुप को आज हम अपने चारों ओर देख पा रहे हैं उसे पंडित जी की देन कहा जा सकता है। आज़ादी के बाद हर क्षेत्र में आमूलचूल परिवर्तन हो रहे थे, नए सपनों की उड़ान भरने के लिए भारत तैयार हो रहा था। संगीत नाटक अकादमी के तहत 1954 में भारतीय कला केंद्र की स्थापना हुई और कथक केंद्र में पंडित जी का व्यक्तित्व या कहें कि पंडित जी के नेतृत्व में कथक केंद्र का व्यक्तित्व उभरकर सामने आने लगा। विश्व का कोई ऐसा देश नहीं होगा, जहाँ उन्होंने कथक की भव्यता को प्रस्तुत न किया हो। रुस कहिए, अमेरिका या जापान या सऊदी अरब या युनाइटेड किंगडम या फ्रांस, जर्मनी, इटली, ऑस्ट्रिया या चेक गणराज विश्व के बड़े मंचों पर कथक के पारंपरिक एकल नृत्य को रखना व्यावहारिक न होता शायद इसलिए उन्होंने आकार में बड़े उन मंचों के हिसाब से कई नृत्य नाटिकाओं की रचना की जिसमें कथक की सामूहिक प्रस्तुति समाहित होने लगी। आप समझ सकते हैं कि विराट जन समुदाय के बीच बड़े क्षेत्रफल वाले मंच पर प्रस्तुति देने के लिए उसका विस्तार भी उसी तरह करना होगा। पंडितजी ने कथक को समय के साँचे में इस बखूबी से ढाला कि पिता अच्छन महाराज और चाचा शंभू महाराज तथा लच्छू महाराज से मिली लखनऊ घराने की खालिस तासीर भी बनी रही और उसने नया जामा भी पहन लिया।

पद्म विभूषण से सम्मानित पंडित जी ने कथक की भाव-भंगिमाओं को समेटते हुए 'माखन चोरी', 'फाग बहार', 'कथा रघुनाथ की', 'कृषनयन', 'डालिया', 'मालती-माधव', 'कुमार संभव', 'शाने-अवध' जैसी एक से बढ़कर एक नृत्य नाटिकाओं की प्रस्तुति दी। कथानक को प्रस्तुत करने के लिए हाथ, उंगलियाँ, चेहरा, भवें, पाँव की थिरकन, कसक-मसक, कलाइयों की गति सभी को लयबद्ध तरीके से प्रस्तुत किया मतलब कथक करते समय केवल पैर ही नहीं संपूर्ण शरीर से नृत्य की कलात्मकता अभिव्यक्त हो इस ओर ध्यान दिया, वहीं प्रस्तुति देने वालों की वेशभूषा, अलंकरण, मुख सज्जा, वाद्य वृंद, ध्वनि-प्रकाश के साथ निर्धारित समय सीमा में कथावस्तु पिरोने का सलीका भी शुरु किया।

कला के सोपान में उनके साथ चित्रकारी भी जुड़ी थी और रंगों के साथ स्वाद की दस्तक देते वे गोल-गप्पों और सुपारी के शौकीन थे। महाराज जी की प्रस्तुतियों में ज्यामितीय आकृतियों को बनते हुए देखा जा सकता था। ऐसा लगता है जैसे वे गणितज्ञ रहे होंगे तभी शब्दों को कविताओं में बाँध लेते थे, बृजश्याम नाम से उनकी कविताएँ देखी जा सकती हैं। हर बोल को निर्धारित आवर्तन में सम पर लेकर आने की महारथ गणित को जाने बिना कैसे संभव है! लालित्य के साथ ताल पक्ष पर मज़बूती ही थी जिससे वे तबला, ढोलक, पखावज जैसे वाद्यों को बजाने का हुनर भी जानते थे और वायलिन, सरोद, बाँसुरी पर सुर छेड़ने के साथ बड़ी कुशलता से गा भी उठते थे। उनसे ठुमरी, दादरा, भजन और ग़ज़लों को सुना जा सकता था। वे गीत पसंद करते थे और उनकी पोती रागिनी के अनुसार रविवार 16 जनवरी 2022 को 83 साल की उम्र में जब उन्होंने अंतिम साँस ली तो उससे पहले रात के भोजन के बाद वे अंताक्षरी खेल रहे थे, तभी उन्हें दिल का दौरा पड़ा। चार फरवरी को वे 84 साल के हो जाते। उन्हें पुराने फ़िल्मी गीत बहुत अच्छे लगते थे।
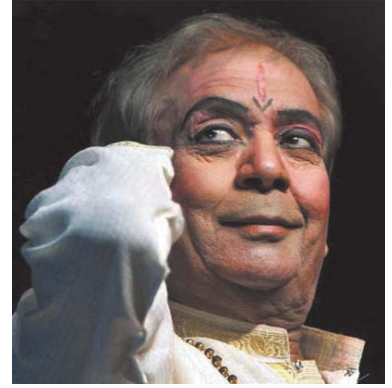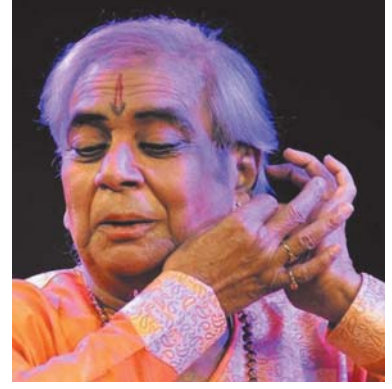
पंडित बिरजू महाराज का पैदाइशी नाम दु:खहरण था लेकिन जिस अस्पताल में वे जन्मे वहाँ उस समय बाकी कई लड़कियों का जन्म हुआ। यह अकेले कान्हा थे इसलिए नाम बृजमोहन रखा गया। बिरजू से बिरजू महाराज हो गए...।

ऐसा नहीं था कि उन्हें पुराना अच्छा लगता था तो नए से वे दूरी बनाते हों। न केवल 'कथक केंद्र' बल्कि 1998 में वहाँ से फ़ैकल्टी प्रमुख और निदेशक के रूप में सेवानिवृत्त होने के बाद दिल्ली में अपना डांस स्कूल 'कलाश्रम' भी खोला ताकि नई पीढ़ी को नित नया सिखाते रहें। पुराने फ़िल्मी गीतों की बात चली तो उन्होंने सत्यजित रे की 'शतरंज के खिलाड़ी' में नृत्य निर्देशन किया था। इस फ़िल्म में उन्होंने ख़ुद संगीत तैयार कर गाया भी था। लखनऊ के नवाब वाज़िद अली शाह ने कथक परंपरा को बढ़ाया और सत्यजित रे ने 1977 में 'शतरंज के खिलाड़ी' फ़िल्म बनाई थी जिसमें नवाब वाज़िद अली शाह से जुड़ी कहानी भी थी। उसके बाद 'दिल तो पागल है', 'गदर', 'डेढ़ इश्किया', 'बाजीराव मस्तानी' जैसी नई फ़िल्मों में भी उन्होंने नृत्य निर्देशन किया। दक्षिण के अभिनेता सुपर स्टार कमल हासन के लिए उन्होंने 'विश्वरुपम' में 'उन्नाव कानाधू नानी' गीत कोरियोग्राफ़ किया था जिसके लिए पंडितजी को राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला। उनके कोरियोग्राफ़ किए गीतों की बात करें तो 'ओ काहे छेड़ मोहे', 'ओ जगावे सारी रैना', 'मोहे रंग दो लाल' जैसे लोकप्रिय गीत हैं। देवदास के गीत 'काहे छेड़' में शुरुआती दो पंक्तियाँ बिरजू महाराज जी की हैं, उसके बाद कविता कृष्णमूर्ति की आवाज़ है।

पंडितजी ने अपने एक इंटरव्यू में कहा था मेरी शर्त थी कि अगर हीरोइन पूरे कपड़े पहनेगी, अच्छा अभिनय, आंखों से बात करेगी, पलकों से बात करेगी, जो वहीदा जी, मीना कुमारी और मधुबाला में अदा थी, तब तो मैं निर्देशन करूँगा। 'बाजीराव मस्तानी' के 'मोहे रंग दो' के लिए उन्हें फ़िल्म फ़ेयर पुरस्कार भी मिला। इसके अलावा उन्हें संगीत नाटक अकादमी सम्मान, कालिदास सम्मान, लता मंगेशकर पुरस्कार, भरत मुनि सम्मान आदि से भी नवाज़ा गया। लेकिन कोई कलाकार केवल इसलिए तो महान् नहीं होता कि वह कितने पुरस्कारों से सम्मानित हुआ बल्कि उसने किस विरासत को सहेजा और आने वाली पीढ़ी के लिए क्या विरासत छोड़कर गया इससे वह महान् बनता है। पंडित बिरजू महाराज जी का पैदाइशी नाम दुःखहरण था लेकिन जिस अस्पताल में वे जन्मे वहाँ उस समय बाकी कई लड़कियों का जन्म हुआ और यह अकेले कान्हा थे इसलिए बृजमोहन रखा गया जो बिरजू से बिरजू महाराज हो गए... पर दुःखहरण करने वाले यूँ दुःख देकर तो जाया नहीं करते न..

कला के सोपान में उनके साथ चित्रकारी भी जुड़ी थी और रंगों के साथ स्वाद की दस्तक देते वे गोल-गप्पों और सुपारी के शौकीन थे। महाराज जी की प्रस्तुतियों में ज्यामितीय आकृतियों को बनते हुए देखा जा सकता था। ऐसा लगता है जैसे वे गणितज्ञ रहे होंगे!

गिरिजा देवी और महाराज

किरदार

...सो हम फ़कीर हो गये !

शेखर सेन

मैं एक-एक शब्द के गूढ़ार्थ में जाता हूँ। शब्द तो केवल शब्द है, आपने उसका अर्थ जान लिया, तब भी आप उसका बोध नहीं समझ पाते, बोध हो गया तो भाव छूट जाता है, भाव पा लिया तो गूढ़ार्थ कहाँ पता लगा पाए। आपको गूढ़ार्थ भी खोजना होता है। ... तल्लीनता और समर्पण में गहरे पैठी अपनी कलात्मक चेतना से निकले इस सार को समेटे गायक-रंगकर्मी शेखर सेन जब दर्शकों के बीच जाते हैं तो सचमुच उनकी मुद्रा किसी दरवेश की हो जाती है। 'रंग संवाद' के लिए साहित्य-कला की जिज्ञासु रसिक स्वरांगी साने ने शेखर की सांस्कृतिक यात्रा और उनके तजुर्बों को यहाँ करीने से सँजोया है।

यह संक्रमण काल है, गिमिक काम कर रहा है। सब जैक ऑफ़ ऑल होना चाहते हैं। यू-ट्यूब का दौर है। आप एक चैनल पर होते हैं, नौ से ग्यारह सेकंड में आपको कोई दूसरा वीडियो लुभाने लगता है। ध्यान उस ओर भटक जाता है। ऐसे में दर्शकों को नाटक के किसी एक प्रयोग में दो घंटे तक जोड़े रखना महत्वपूर्ण है। मैं पूरा ध्यान रखता हूँ कि मेरी प्रस्तुति में कहीं कोई कमी न रह जाए। एकल प्रस्तुति देना कठिन है। इस दौर में एकल प्रस्तुतियाँ समाप्त होती जा रही हैं। शास्त्रीय गायक अपने साथ शिष्यों को लेकर बैठते हैं कि बीच-बीच में वे सुर लगा दें, शास्त्रीय नृत्य में भी समूह के साथ नृत्य होता है। जहाँ कई कलाकार होते हैं। एक कमज़ोर हुआ तो दूसरा उसे संभाल लेता है पर जब आप अकेले सब करते हैं तो आपको ही हर पात्र करना है और कसावट के साथ करना होता है। मैं एक पात्रीय चरित्र को निभाता हूँ।

संगीतकार, अभिनेता, साहित्यकार तथा संगीत नाटक अकादमी के पूर्व निदेशक पद्मश्री शेखर सेन की इस चुनौती को समझा जा सकता है। वे कहते हैं कि कलाकार का चुंबकत्व होता है जो दर्शकों को जोड़े रखता है। जैसे कोई माँ अपने बच्चे को कोई पाठ याद कराती है और फिर उससे पूछती है कि तो बच्चा माँ के सिखाए पाठ को ही ज्यों का त्यों दोहराता है, तब वह यह नहीं सोचता कि माँ को तो सब पता है, उसी ने तो बताया, तो मैं क्यों बताऊँ। इसी तरह कबीर, तुलसी, सूर या स्वामी विवेकानंद के बारे में सबको पता है लेकिन उसे किस रोचकता से पेश किया जा रहा है, यह अहम है। मैं जब कोई भी पात्र करता हूँ तो उसका विवेचन करता

दोहन या शोषण?

शेखर जी का लोनावला में अपना खेत है। वे कहते हैं कि हमने धरती को माता माना है। और जो धरती से जुड़ा है वो किसी के बारे में बुरा सोच ही नहीं सकता। धरती को हम एक बीज देते हैं, वह हज़ार बीज लौटाती है। पिछले ढाई वर्षों से मैं अपने खेतों का उपजा चावल ही खाता हूँ। गेहूँ, मेथी, बथुआ, मटर, स्ट्रॉबेरी सब मेरे खेतों में है। बिना प्रकृति को जाने हम संस्कृति को जान ही नहीं सकते। 'जियरा में लागे कटार' को समझने के लिए कटार क्या है, यह समझना होगा। कोयल की कूक गाने के लिए उस कूक को सुनना भी तो होगा। टिटहरी, पपीहा इन्हें देखे बिना, इन्हें कैसे जानेंगे? खेतों में वर्षा होती है तो उसका आनंद होता है। ठिठुरना किसे कहते हैं यह खेत में रात को रुककर देखिए फिर पता चलेगा। वहाँ गाय के उपले पर बना गर्म भोजन कीजिए, आनंद आ जाएगा। चैती को वह समझ सकता है जो धूप में तपा हो। मेरी खेती गौ आश्रित है। किसी रासायनिक खाद का उपयोग नहीं करता। गाय के गोबर, गोमूत्र, दूध-दही से फसलों को खाद-पानी मिलता है।

आप देखिए दोहन शब्द कहाँ से आया? गाय का जिस स्थान पर दूध निकाला जाता है, उसे दुहिता कहते हैं। दोहन शब्द वहाँ से आया है। गाय के दूध का हम दोहन करते हैं। गाय को भगवान् ने चार थन दिए हैं। दो उसके बछड़े के लिए हैं। दो अतिरिक्त हैं। यदि अतिरिक्त थनों से दूध न निकाला गया तो गाय बीमार पड़ जाएगी। मशीनों से गाय के चारों थनों से दूध निकाला जाता है, यह उसका शोषण है। दोहन और शोषण में अंतर है। आपको दोहन करना है।

हूँ। स्वामी विवेकानंद के विचार प्रेरणादायी हैं। हिंदू योगी कहलाते स्वामी जी कहते हैं कि मंदिर के ईश्वर को देखने से कोई लाभ नहीं है, राष्ट्र ही मंदिर है। अब इसे सुनना, गुनना और विश्लेषण करना होगा तभी तो आप उसके मर्म तक पहुँच पाएँगे। कबीर के दोहे की कई परतें हैं, जो आपको खोलनी आनी चाहिए। जैसे 'बुरा जो देखन मैं चला'...यह दोहा सबको पता है लेकिन 'बुरा न मिलया कोई', या 'मुझसे बुरा न कोय' को कितने लोग अमल में ला पाते हैं। उसे व्यवहार में भी तो लाना होगा न!

वे कहते हैं कि ईश्वर ने 24 घंटे दिए हैं तो उन 24 घंटों का दोहन होना चाहिए। मैं रोज़ सुबह तीन-साढ़े तीन बजे उठ जाता हूँ। खेतों के लिए निकलता हूँ तो मेरी गाड़ी में म्यूज़िक ऑपरेटर सिस्टम आदि हैं, जाते समय स्क्रिप्ट पर काम करता हूँ। आते समय शेष बची स्क्रिप्ट पर काम करता हूँ। समय बर्बाद नहीं होने देता। रसोई में काम करना मुझे पसंद है। साबूदाना खिचड़ी बना लेता हूँ, कभी डोसा, कभी आँवले का अचार भी तो हल्दी का औषधी फ़ेस पैक भी। हर सुबह शास्त्रीय गायन का अभ्यास करता हूँ। कबीर कहते हैं- 'एक साधे सब सधै' उसी तरह। एक बड़ा राग लेता हूँ उसमें बड़ा ख्याल, छोटा ख्याल गाता हूँ, फिर कोई छोटा राग लेता हूँ, उसका अभ्यास करता हूँ। फिर ठुमरी-कजरी गाता हूँ। इसे तालीम कहते हैं। तलवार में धार कर लूँ ऐसा समझ खुद को माँजता रहता हूँ। धार भी चाहिए और भार और वज़न भी। जैसे कटहल काटना हो तो पतला चाकू नहीं चलेगा, उस चाकू का वजन भी होना चाहिए। ऐसा ही किसी के हृदय में प्रवेश करने के लिए आपके पास धार भी होनी चाहिए और भार भी। नाटक तो परकाया प्रवेश है। किसी पात्र को जीवंत करना किसे कहते हैं, इसे ही न कि वह साक्षात् दिखने लगे। सुधीर फडके का स्वरबद्ध लता जी का गाया 'ज्योति कलश छलके' सुना होगा सबने उसमें 'ज्योति' कहा गया है कोई और गायक होता तो 'जोति' कह देता। नरेंद्र शर्मा की शब्द शक्ति में इन दोनों ने प्राण भरे हैं। प्राण फूँकना मतलब क्या होता है? मान लीजिए आप गणेशजी की कोई मूर्ति लेकर आए, आपको वह बहुत अच्छी लगी और फिर आपको लगा कि इसे तो मैं अपने मंदिर में रखना चाहूँगा तो आप पुजारी को बुलाकर उसकी प्राण प्रतिष्ठा करते हैं। अब वह केवल मूर्ति नहीं रह जाती, उसमें ईश्वर तत्व आ जाता है। कलाकार का यही काम है कि वह कला में प्राण भरे और ऐसा करते हुए अहंकार न करे कि मैंने प्राण भरे हैं। मैंने राग बिहाग या बागेश्री नहीं बनाया। मैंने भाषा के छंद नहीं रचे हैं। उन अच्छे सवैयों को स्वरों में गा रहा हूँ, निधि तो पहले से है मेरे पास, मैं केवल प्रतिनिधित्व कर रहा हूँ। जिन रागों में मैं गा रहा हूँ वे भी मैंने नहीं बनाए हैं, वे भी पहले से मौजूद हैं तो मैं गर्व किस बात का करूँ? यमन या भूप तो पहले से है। मैंने क्या किया है उसमें? हर कलाकार का कर्तव्य है कि वह अपने समाज को बेहतर बनाए, लेखन कर रहा है तो लेखनी से, अभिनय कर रहा है तो अभिनय से, नृत्य कर रहा है तो नृत्य से। वह प्रतिनिधि है, बेहतर बना रहा है तो कलाकार है। यदि धनोपार्जन कर रहा है तो कलाकार नहीं है। शंभु महाराज जब कथक करते हैं तो उनकी एक-एक मुद्रा पर हम वारी-वारी जाते हैं, ज़ाकिर हुसैन के तबले में भी वैसा ही चुंबकत्व है। इसके लिए आपके पास जो पत्थर है, उसे तराशते रहना होगा। ईश्वर ने सभी के हाथों में कोई न कोई हुनर रुपी पत्थर

दिया है, आपको उससे तराशना है। आपकी छैनी निर्मम होनी चाहिए। खुद की गलतियों को सुधारना आना चाहिए। यह निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है।

शेखर सेन इस प्रवाह में जोड़ते हैं कि मैं एक-एक शब्द के गूढ़ार्थ में जाता हूँ। शब्द तो केवल शब्द है, आपने उसका अर्थ जान लिया, तब भी आप उसका बोध नहीं समझ पाते, बोध हो गया तो भाव छूट जाता है, भाव पा लिया तो गूढ़ार्थ कहाँ पता लगा पाए। आपको गूढ़ार्थ भी खोजना होता है। हम भोजन को व्यंजन कहते हैं। यह व्यंजन शब्द कहाँ से आया? तो भाषा शास्त्र में स्वर और व्यंजन हैं। हमारे ज्वार-बाजरा स्वर हैं और उनसे बनने वाले पकवान व्यंजन हैं। कढ़ी बना ली तो व्यंजन हो गया लेकिन स्वर के बिना व्यंजन अधूरा है और स्वर है चावल। कढ़ी के साथ चावल बना तो पूर्णता होती है। हमारे यहाँ शब्द ब्रह्म कहा गया है, स्वर ब्रह्म कहा गया है और किसी संस्कृति में शब्दों को या स्वर लहरियों को ब्रह्म नहीं कहा गया है। इनकी साधना करने वाले साधक हैं। उन्हें हिमालय में जाकर तपस्या करने की ज़रुरत नहीं है, वे कला कर्म करते हुए ही योगी हैं। महाराष्ट्र में तुकाराम हुए तो पंजाब में गुरु नानक हुए, उत्तर प्रदेश में सूर, तुलसी, कबीर तो राजस्थान में मीरा हुई, ये सभी शब्द ब्रह्म की तपस्या करने वाले थे। नाद ब्रह्म की तपस्या करने वाले हरिदास थे, उन्हें हिमालय में जाने की ज़रुरत नहीं थी। यह भी देखने योग्य है कि जब अत्याचार बढ़ा था तभी सबसे अधिक भक्तिगीत लिखे गए। सूर, तुलसी, कबीर, मीरा, नानक, चैतन्य महाप्रभु का भक्तिकाल उसी दौरान आया।

यह पूछने पर कि वे स्वयं को शब्द ब्रह्म की साधना करने वाला मानते हैं या स्वर ब्रह्म की, वे कहते हैं मैं खुद को दोनों का सेवक मानता हूँ। मैं बहुत भाग्यशाली रहा हूँ कि मुझे दोनों की सेवा करने का अवसर मिला। मैं खुद को भाग्यशाली इसलिए भी मानता हूँ कि मुझे ऐसा परिवेश, ऐसे माता-पिता, गुरुजन, रिश्तेदार, क्लोज़ नेट परिवार, भाईङ्कबहन मिले। मुझे बड़ा गर्व होता है कि मैं उस मोहल्ले में बड़ा हुआ जहाँ हबीब तनवीर साहब रहते थे। रायपुर के कमला देवी संगीत विद्यालय परिसर में मेरा बचपन बीता। मेरे पिता अरुण कुमार सेन तथा माँ अनीता सेन दोनों मशहूर शास्त्रीय गायक और शिक्षाविद् थे। पिता बहुत अच्छे वक्ता, कवि और ख़्याल गायक थे पर उन्होंने तबले पर किताब लिखी। उनकी तबले पर लिखी पुस्तक 'भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन' एक विश्वसनीय पुस्तक मानी जाती है। हमारा शास्त्रीय संगीत सात-आठ तालों में सिमट गया है पिताजी ने बहुत गहराई से कई तालों को पुस्तक में समेटा है। पिताजी बहुत कम सिखाते थे लेकिन जब सिखाते तो सुबह 6.30 बजे से रात 11 बजे तक सिखाने का सिलसिला जारी रहता। इस बीच केवल पानी पिया जा सकता था। रोना आए तो आँसू पी सकते थे।

माँ बहुत शांत पर महत्वाकांक्षी थीं। मेरे बड़े भाई के बाद मैं पैदा हुआ पर उन्हें लड़की चाहिए थी, सो मुझे लड़की की तरह बड़ा किया। उन्होंने मुझे अचार बड़ी पापड़ बनाना, एम्ब्रॉयडरी करना सब सिखाया। मैं काजल इतने अच्छे से लगाता हूँ कि मेरी पत्नी श्वेता अपनी आँखों में मुझे ही काजल लगाने के लिए

मैंने भाषा के छंद नहीं रचे हैं। उन अच्छे सवैयों को स्वरों में गा रहा हूँ, निधि तो पहले से है मेरे पास, मैं केवल प्रतिनिधित्व कर रहा हूँ। जिन रागों में मैं गा रहा हूँ वे भी मैंने नहीं बनाए हैं। वे भी पहले से मौजूद हैं तो मैं गर्व किस बात का करूँ? यमन या भूप तो पहले से है। मैंने क्या किया है उसमें?

कहती हैं। आप दोस्त चुन सकते हैं, करियर, नौकरी सब चुन सकते हैं पर कोई माता-पिता नहीं चुन सकता। यह ईश्वर का वरदान है कि मुझे ऐसे माता-पिता मिले। माँ की आवाज़ बंद पड़ गई तो उन्होंने अन्नपूर्णाजी से सितार सीखना शुरु किया। आठ साल बाद आवाज़ लौटी तो आवाज़ भारी हो गई थी। उन्होंने हार नहीं मानी। उन्होंने ठुमरी गाना शुरु किया। उन्होंने कई ठुमरियों की रचना की। माँ रोज़ तीस-चालीस कंपोज़िशन बनाती और उनमें से बस किसी एक को चुनती थीं, बाकी फाड़कर फेंक देती थीं। माँ से जाना कि आप अपने श्रोता को फ़ॉर ग्रांटेड नहीं ले सकते। जब मैं सात साल का था तो उस उम्र में पहली ग़ज़ल लिखी थी- 'आए थे तुम खुशी का पैगाम लेकर'। जब मैं दस साल का था तो माँ ने ठुमरी कंपोज़ करने के लिए कहा। मैंने कंपोज़ की। ऐसे ही बहुत सारे दोहे, कोटेशन, मेरुदंड की तानें मैंने कब सीख लीं, मुझे भी पता नहीं चला। जौनपुरी और आसावरी में क्या फ़र्क है, मैं जानने लगा। साहित्य के छंद चौपाई और सोरठे के उच्चारण कैसे हों इसके लिए मुझे अलग से कुछ सीखना नहीं पड़ा, घर में ही ऐसा वातावरण था कि कानों पर सब पड़ता रहा और मैं सीखता चला गया। 'ठुमकि चलत' का उच्चारण 'ठुमकि' ही करना है 'ठुमक' नहीं, न ही 'ठुमकी'..इतनी बारीक बातें मुझे अनायास पता चलती गईं। लच्छू महाराज जी, एन राजम जी, लक्ष्मण प्रसाद जी रायपुर में हमारे यहाँ आते-रहते-रुकते थे। मैंने गायन में विशारद, बी. म्यूज़ किया चक्रधर के कल्याणदास जी और कार्तिक राम जी आए तो माँ ने कहा नृत्य भी सीख लो। मैंने पाँच साल कथक सीखा। वे गुरुजी धोती बंडी पहनते, बीड़ी पीते और मारा करते थे। उन्हें लगता था मारपीट कर ही अच्छा शिष्य तैयार हो सकता है। उनकी नज़र में अच्छा शिष्य वो था जो बहुत मार खा सके। मार खाने की क्षमता पर सब निर्भर करता था। मैं उस समय बहुत रोता था। इतनी लड़कियों के बीच एक लड़का था। माँ ने कहा कितना भी कष्ट हो सीख ले नृत्य ऐसी विद्या है, जो काम ही आएगी। नृत्य का सबक काम आया जब नाटक शुरु किया।

मैंने पाँच साल कथक सीखा। गुरुजी धोती बंडी पहनते, बीड़ी पीते और मारा करते थे। उन्हें लगता था मारपीट कर ही अच्छा शिष्य तैयार हो सकता है। उनकी नज़र में अच्छा शिष्य वो था जो बहुत मार खा सके। मार खाने की क्षमता पर सब निर्भर करता था। मैं उस समय बहुत रोता था। इतनी लड़कियों के बीच एक लड़का था। माँ ने कहा कितना भी कष्ट हो सीख ले नृत्य ऐसी विद्या है। जो काम ही आएगी। नृत्य का सबक काम आया जब नाटक शुरु किया। छोटी छोटी चीज़ें आपको अलग पॉलिश देती हैं।

छोटी छोटी चीज़ें आपको एक अलग पॉलिश देती हैं। यह सारी तैयारी है जो मेरे काम आती है। नाटक कबीर में 23 रागों में निबद्ध 45 जगह गीत हैं। सूरदास में ध्रुपद में बैजू बावरा को 28 मात्रा के ब्रह्म ताल में गाते हुए दिखाता हूँ। सूरदास में 36 स्थानों पर गाता हूँ। यहाँ उन रागों का चयन किया है जो उस समय थे जैसे भीम पलासी, बिलावल, हमीर, नंद, गौड सारंग। स्वामी विवेकानंद ने शास्त्रीय संगीत सीखा था। अपने नाटक विवेकानंद में ध्रुपद में स्वामीजी को चौताल में गाता हुआ दिखाता हूँ। साहब नाटक में 28 गीत हैं, टप्पा और बहिणाबाई की ओली (मराठी छंद) गाता हूँ। इसी तरह तुलसीदास में 52 स्थानों पर गाता हूँ, 27 किरदार निभाता हूँ। विवेकानंद में 22, कबीर में 38। मैं पिछले 23 वर्षों से एक ही लगन और एक ही निष्ठा से कार्य कर रहा हूँ। मेरा काम परकाया प्रवेश सा है। मंच पर मैं शेखर सेन नहीं रहता, सूर-तुलसी या कबीर-स्वामी विवेकानंद हो जाता हूँ। मंच पर जाने से पहले मैं गुरुजन, माता-पिता और उस चरित्र को प्रणाम करता हूँ, जिसे निभा रहा हूँ। मैं हर बार कबीर के आनंद में, सुर-तुलसी के आनंद में डुबकी लगाता हूँ।

शेखर सेन के हिस्से केवल सफलता ही नहीं, असफलता भी आयी। उनके मुताबिक जब तक असफलता को नहीं समझेंगे, सफलता को भी नहीं समझ पाएँगे। मैं वर्ष 1979 में मुंबई आया था। म्यूज़िक कंपोज़र बनना था लेकिन दो सालों में ही पता चल गया कि यह मेरा क्षेत्र नहीं है। मुझे दो फ़िल्में भी मिलीं पर दोनों बंद पड़ गईं जब किसी का गाना बंद पड़ जाता है तो उसे आगे काम नहीं मिलता, मुझे भी काम मिलना बंद हो गया। मुझे एचएमवी ने साइन किया था। रिकॉर्डिंग के दो दिन पहले एचएमवी के संजीव कोहली जी

ने पूछा भजन गाएँगे? मैं तो ग़ज़ल गाने वाला था। तब मेरी आयु 24 साल थी। एक रात में छह गाने लिखे, कंपोज़ किए। दो दिन बाद जहाँ ग़ज़ल रिकॉर्ड होने वाली थी वहीं भजन रिकॉर्ड हुए। उसके बाद तो ग़ज़ल-भजन सहित अन्य विधाओं में 150 से अधिक संगीत अलबम आ गए। धारावाहिक रामायण में पार्श्वगायन के अलावा गीता रहस्य सहित कई धारावाहिकों के लिए संगीत दिया। उस समय डिस्को की लहर आई थी, फिर ग़ज़ल की लहर आ गई उसके बाद सूफ़ी का दौर आया। हर कोई सूफ़ियाना गाने लगा। जिन्हें सूफ़ियाना कलाम नहीं पता वे भी सूफ़ी गाने लगे। वे कहते हैं हर निर्गुण भजन को आप सूफ़ी नहीं कह सकते।

हम दूसरों का अनुसरण करने में लगे रहते हैं। दूसरों का अनुसरण मत करो। यदि मुझे अनुसरण करने के लिए बनाया होता तो भगवान् ने मुझे भेड़ बनाया होता। पर यदि मुझे मनुष्य बनाया है तो मुझे किसी का अनुगमन नहीं करना है। अपना रास्ता ढूँढो, नई चीज़ें आज़माओ। ज्ञान लगातार पाते रहने की प्रक्रिया है। कोई यह नहीं कह सकता कि हाँ अब मैं ज्ञानी हो गया। एम.ए. की डिग्री इसलिए दी जाती है कि इससे आगे आपको चलना है। मैंने वायलिन सीखा भी सिखाया भी, गायन का टीचर बन गया 15 साल की उम्र में। काफी राग जो मैंने ऐसे ही सीख लिया था उसे और तैयार करके आता था। कम उम्र में अपने से बड़ों को सिखाने के लिए ज़रुरी था कि मुझे खुद पता हो कि काफी या सिंदूरा में क्या फ़र्क है।

मैंने सब कुछ सीखा वेस्टर्न नोटेशन प्यारेलाल जी के पिताजी बाबाजी से सीखे। कॉड्स का काम सीखा। कॉड्स का चार्ट खुद बनाता था और इंडियन म्यूज़िक पीसेस भी खुद बनाता था। जब वर्ष 1997 में नाटक लिखा और उसका वाचन डॉ. धर्मवीर भारती जी के सामने किया तो उन्होंने कहा कि तुम्हें स्वयं अभिनय करना होगा। इतने बड़े नाट्यकार 'अंधा युग' के लेखक इस बात को कह रहे थे तो मैंने उसे संजीदगी से लिया और अपने नाटकों में मैं खुद अभिनय करने लगा। वर्ष 1998 में तुलसीदास लिखा, जिसका निर्देशन भी मैंने किया और उसमें अभिनय भी और यह सिलसिला चल पड़ा। शेखर जी को वर्ष 2015 में तत्कालीन राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने पद्मश्री से नवाज़ा और उसके दो माह बाद उन्हें संगीत नाटक अकादमी का अध्यक्ष चुना गया। शेखर बताते हैं कि अकादमी के अध्यक्ष पद के दौरान मैंने प्योर क्लासिकल प्रोग्राम नहीं देखा। चाहे डांस हो या पपेट शो सबमें फ्यूज़न आ गया है। यह संक्रमण काल है। पर जब ईश्वर काम करवाना चाहते हैं तो शक्ति, भक्ति और हालात सब दे देते हैं। मैंने अपना काम ईमानदारी से और साल के 365 दिन किया। अपनी विचार प्रक्रिया के बारे में वे कहते हैं कि मैं संगीत में ही सोच पाता हूँ। मुझे लगता है पंखा गंधार में चल रहा है। फ़ोन में धैवत आ रहा है। मैं संगीत के बिना जी नहीं सकता। हम सबके भीतर संगीत भरा हुआ है। हमारी धड़कन भी तो लय में चलती है। मैंने अपने आपको इस तरह पहचाना है कि मेरी धातु ताँबा है। ताँबे को रोज़ धोते रहें तो काला नहीं पड़ेगा वरना कोयले से काला हो जाएगा और रोज़ धोते रहें तो सोने से भी ज्यादा चमकने लगेगा। मैं इसलिए रोज़ रियाज़ करता हूँ क्योंकि मेरे नाटक में मैं ही सब करता हूँ। लिखता भी मैं ही हूँ, संगीत भी मैं ही देता हूँ। गायन भी मेरा होता है और मेकअप मैन भी मैं ही होता हूँ। मेकअप मैन अक्सर जल्दी में होते हैं और हर जगह के मेकअप मैन अपनी अलग शैली में मेरी शक्ल बना देते थे इसलिए मैंने ख़ुद का मेकअप खुद करना शुरु किया।

वे बताते हैं विग की धुलाई में 600 रुपए लग जाते हैं, नकली दाढ़ी 300 रुपए में धुलकर आती है, थियेटर का पेमेंट चालीस हज़ार रुपए तक होता है फिर लाइट, कॉस्ट्यूम, साउंड का खर्च अलग, लेकिन स्पॉन्सर नहीं मिलता। मैं अब उसके पीछे भागता भी नहीं हूँ। पर दर्शकों को समझना चाहिए कि एक नाटक करने में इतना अधिक खर्च आता है तो कुछ न कुछ अपनी ओर से अवश्य दें। केवल नाटक ही नहीं, नृत्य-संगीत आदि भी जब आप देखने जाएँ तो आर्थिक सहयोग अवश्य करें। हम किसी मल्टीप्लेक्स में परिवार के साथ जाते हैं तो आसानी से हज़ार-दो हज़ार रुपए खर्च हो जाते हैं, हमें मलाल नहीं होता पर नाटक का टिकट दो सौ या तीन सौ का खरीदने में हमारी जान पर बन आती है। मैंने अपने नाटकों का पारिश्रमिक इसलिए अधिक रखा है कि मैं कम प्रयोग करूँ और गुणवत्ता बनाए रखूँ। कम प्रस्तुति दूँ लेकिन जो भी दूँ पूरी ऊर्जा से दूँ। तब भी टिकट बिकती नहीं, खर्चा वहीं रहता है, सो हम फ़कीर हो गए।

शकीला बानो भोपाली। मशहूर कव्वाल। अमीर खुसरो की रिवायत को ज़िंदा रखने वाली शख़्सियत। बेमिसाल इस मायने में कि एक औरत होकर फ़न-ए-कव्वाली की दुनिया में अलग लकीर खींचते हुए शोहरत और क़ामयाबी के नए मुकाम उन्होंने तय किए।

गुज़िश्ता 16 दिसंबर को उनकी 20वीं बरसी थी। जो इस दुनिया में आया है, वह जाएगा। यह कुदरत का निज़ाम है। लेकिन कुछ लोगों का जाना टीस देता है। उनकी यादें हमेशा दिलो-दिमाग में घर किए होती हैं। इसके इतर रुढ़िवादिता के खिलाफ़ शकीला बानो भोपाली एक चेहरा रही। रिवायतों से बेपरवाह। महिला सशक्तिकरण की प्रतीक। सरल, सहज और सौम्य व्यवहार की धनी। हाज़िर जवाब भी। उर्दू, अरबी और फारसी की ज्ञाता। लेकिन काबलियत का ठसका नहीं। बालीवुड अदाकारों, शायरों, फ़िल्मी राइटरों, संगीतकारों आदि से रिश्ता लेकिन फ़िल्मी ग्लैमर को लेकर कोई भ्रम नहीं। कव्वाली के जरिए देश-दुनिया में नाम कमाया लेकिन अहंकार नहीं किया। व्यवहार में भी विनम्रता झलकती। सादगी बेमिसाल। हृदय से उदार। वे लोगों के बीच भेदभाव नहीं करती। किसी से उम्मीद भी नहीं बंधी। सामाजिक सरोकार से हमेशा नाता रखा। उनका मानवीय पक्ष हमेशा प्रबल रहा। मदद करने का फ़न आसमानी हुक्म जैसा था। मसलन, किसी को एक हाथ से मदद करो तो दूसरे हाथ को ख़बर न होने दो। देश-दुनिया में कव्वाली के जरिए भोपाल का नाम रोशन करने वाली शकीला बानो भोपाली इस दुनिया में नहीं है लेकिन ऐसा लगता है कि फिज़ा में अब उनकी आवाज़ सुनाई देगी। वे हम्द के कोई बोल गुनगुना रही होगी, या फिर कोई ग़ज़ल का मुखड़ा उनके लबों पर होगा- ''वो एक शख़्स दिल को भला-भला लगे/उसी से मुकद्दर मेरा ख़फ़ा-ख़फ़ा सा लगे/ये आंधियों की नवाजिश ये जुल्मतों का करम/के हर चराग़े तमन्ना बुझा-बुझा सा लगे।''

भोपाल से उनका जज़्बाती रिश्ता था। लोग उन्हें आपा कहते थे। आपा का रिश्ता उनके अख़लाक की वजह से क़ायम हुआ। आम-ख़ास से मिलने का अंदाज़ एक जैसा था। भोपालियों को ख़ूब चाहती थीं। उनका बातचीत का अंदाज़ काफ़ी शाहाना था। जुबान शीरीं थीं। उनसे रिश्ता रखने वालों को बेहतर ज़िंदगी और

नज़ीर

बेमिसाल बानो

अलीम बज़्मी

उनके पिटारे में भोपाल से जुड़े कई क़िस्से और कहानियाँ थे। इनमें अदबी महफ़िल के वाक़ये। कुछ लतीफ़े और कुछ ज़िंदगी की कड़वी हक़ीक़त। वो अपनी गुरबत के दौर को कभी नहीं भूलती। साज़-ओ-आवाज़ से उनका क़रीबी रिश्ता रहा। शायद यही वजह थी कि बहुत कम वक्त में देश-दुनिया के कव्वाली के नक़्शे में अपना नाम क़ायम कर लिया।

क़िरदार को लेकर हिदायतें, नसीहतें और समझाइश देती। इनमें छुपा होता था बड़ी बहन या बुजुर्ग का अपने छोटे के लिए लाड़-दुलार। फ़िल्मी बातों से बेपरवाह रहकर भोपाल में हरेक की फिक्र करती। मुलाकात में एक-एक की खैरियत पूछती। बढ़ते-संवरते भोपाल को लेकर बहुत खुश होती। उनके पिटारे में भोपाल से जुड़े कई क़िस्से और कहानियां थे। इनमें अदबी महफ़िल के वाकये। कुछ लतीफे और कुछ ज़िंदगी की कड़वी हकीकत। वो अपनी गुरबत के दौर को कभी नहीं भूलती। साज़-ओ-आवाज़ से उनका क़रीबी रिश्ता रहा। शायद यही वजह थी कि बहुत कम वक्त में देश-दुनिया के कव्वाली के नक्शे में अपना नाम कायम कर लिया। लेकिन अफसोस गैस कांड के दौरान मिथाइल आइसो सायनाइड के असर से वे अछूती नहीं रही। गैस के असर से उन्हें पहले दमा हुआ फिर फेफड़ों ने अपनी पूरी ताक़त से काम करना बंद कर दिया। साथ ही डायबीटिज, ब्लड प्रेशर के मर्ज़ ने भी उनको तोड़ दिया। जिस्म के साथ आवाज़ साथ छोड़ने लगी। इस वज़ह से कव्वाली के प्रोग्राम करना बंद कर दिए। फिर मुंबई के सेंट जॉर्ज अस्पताल में उन्होंने 2002 में फानी दुनिया को अलविदा कह दिया।

अब थोड़ा फ्लैश बैक में चले तो 09 मई 1942 को जन्मी शकीला बानो भोपाली के पिता अब्दुर्ररशीद खान एवं चाचा अब्दुल कदीर खान उर्दू अदब में काफी दखल रखते थे। उनकी माँ जमीला बानो तो हाउस वाइफ थीं। उनका शायरी से कोई सरोकार नहीं था। वहीं उनके चार भाई क्रमशः अनीस मोहम्मद खाँ, इदरीस मोहम्मद खाँ और रफीक मोहम्मद खाँ जबकि इकलौती बहन का नाम जरीना हैं। घर का माहौल उर्दू अदब से जुड़ा होने की वज़ह से शकीला आपा का ध्यान शायरी की तरफ चला गया। वालिद ने उनका शौक देखकर उन्हें अपने साथ मुशायरों में लेकर जाने लगे। वहाँ शायरों का कलाम बहुत ध्यान से सुनती। फिर उन्होंने शेरों को गढ़ने के साथ गुनगुना शुरु कर दिया। ऐसे में साज़ की आवाज़ उन्हें खींचने लगी। उन्हें ऐसा लगता था कि साज़ उनकी रुह की झनकार है। वो उन्हें छूने लगी तो घर में चुपके-चुपके साज सीखना शुरु किया। अपने फ़न का मुजाहिरा सहेलियों के बीच चोरी-छिपे करने लगी। उनके अंदाज़े-ए-बयाँ पर सहेलियाँ तालियाँ बजाती तो उनका हौसला बढ़ता चला गया। देखते ही देखते सूफियाना कलाम की तरह उनका ध्यान गया तो उन्होंने कम वक्त में ही, हम्द, नात, मनकवत को जान लिया। ये भी जान लीजिए हम्द के मायने अल्लाह की तारीफ में कलाम को कहते हैं। नात में रसूल की शान का

दिलीप कुमार ने मुंबई आने को कहा। एक मौक़ा ऐसा आया कि बीआर चोपड़ा अपनी यूनिट के साथ 'नया दौर' फ़िल्म की शूटिंग के सिलसिले में बुदनी आए तो वहाँ उन्हें प्रोग्राम पेश करने के लिए बुलाया गया। वहाँ शकीला बानो भोपाली ने ऐसा समां बांधा कि ट्रेजिडी किंग के नाम से मशहूर फ़िल्मी कलाकार दिलीप कुमार ने उन्हें मुंबई आने का न्योता दिया। इसके बाद 1950-60 के दशक में शकीला बानो भोपाली ने पलटकर नहीं देखा।

बखान किया जाता है तो मनकवत में औलिया का जिक्र होता है। अमीर खुसरो की विरासत को संभालने वाली आपा ने कव्वाली को जब अपनाया तब भोपाल रिवायती शहर था। यहाँ पर्दे का बड़ा एहतराम होता था। औरतों को घर की देहरी लांघने की इजाज़त नहीं थीं। सख़्त पर्दे में ख्वातीन को रहना पड़ता था। रुढ़िवादी और तंग नज़रिए का माहौल होने से महिला आज़ादी तो नाम को भी नहीं थीं। मध्यम वर्गीय परिवार के लिए ये तो और मुश्किल भरा था। लेकिन जिद्दी आपा ने तमाम बंधनों को तोड़ा। माँ-बाप की मर्ज़ी के खिलाफ कव्वाली को अपना लिया। ये आसान नहीं था। घर में खूब लान-तान हुई लेकिन हठी शकीला कहाँ मानने वाली थीं। कव्वाली को दरवेशों के बीच मकबरों, मज़ारों, बाज़ारों, शादी-ब्याह की महफ़िलों आदि की भीड़ तक में ले गई। उर्स में शामिल होने लगी। इसके चर्चे भोपाल रियासत के नवाब हमीदुल्ला खाँ तक पहुँचे तो उन्होंने महल में प्रोग्राम देने के लिए बुलाना शुरु कर दिया। तब महल में मिली दाद से हौसला बढ़ा तो वे शहर से बाहर भी जाकर कलाम

पेश करने लगी। दिलीप कुमार ने मुंबई आने को कहा। एक मौक़ा ऐसा आया कि बीआर चोपड़ा अपनी यूनिट के साथ 'नया दौर' फ़िल्म की शूटिंग के सिलसिले में बुदनी आए तो वहाँ उन्हें प्रोग्राम पेश करने के लिए बुलाया गया। वहाँ शकीला बानो भोपाली ने ऐसा समां बांधा कि ट्रेजिडी किंग के नाम से मशहूर फ़िल्मी कलाकार दिलीप कुमार ने उन्हें मुंबई आने का न्यौता दिया। इसके बाद 1950-60 के दशक में शकीला बानो भोपाली ने पलटकर नहीं देखा। तक़रीबन 45 फ़िल्मों में काम किया और दो दर्जन मुल्कों में कव्वाली के प्रोग्राम पेश किए। एचएमवी ने उनके हुनर को समझते हुए एक अल्बम भी वर्ष 1971 में निकाला था।

वो ऐसी कव्वाल थी कि मिसरा सुनाने के साथ उसे समझाती भी थीं। इसके लिए शेर की डिमांड के मुताबिक उसे बकायदा प्ले करती ताकि जिन्हें समझ में नहीं आया, उसे समझ सके। हारमोनियम के सहारे वो घुटनों पर खड़े होकर अपनी बात कहती। उनका ये अंदाज़ कई मायनों में अनूठा था। उनकी पापुलर कव्वालियों में ''अब तुम पे छोड़ दिया है, जहर दे या जाम दे''। इसके अलावा ''जाम में शराब नहीं'' काफ़ी मकबूल हुई कव्वालियों में से हैं।

सुना है कि उनका आख़िरी वक्त काफ़ी मुश्किलों में गुज़रा। जो कमाया वो बचा के नहीं रख सकी। नतीज़े में गुरबत से रिश्ता कायम हो गया। ऐसा सुना है कि जब वे मुंबई के एक अस्पताल में दाखिल थीं तो फ़िल्मी कलाकार दिलीप कुमार और जैकी श्राफ ने उनकी काफी मदद की। दोनों ने कभी इसका जिक्र नहीं किया।

वर्ष 1998 में चुनाव प्रचार के सिलसिले में फ़िल्म अभिनेता राजेश खन्ना भोपाल आए। यहाँ उन्होंने शकीला बानो भोपाली से मिलने की ख्वाइश की। इस पर दूसरे दिन सुबह आठ बजे का वक्त तय हुआ। वे एयरपोर्ट जाते आपा से मिलेंगे। राजेश खन्ना के अपने ग़रीबखाने में तशरीफ लाने को लेकर ऐसा लगा कि आपा को नई ज़िंदगी मिल गई। रेतघाट के सामने स्थित मकान में जब राजेश खन्ना आए तो 'आपा' कहते हुए खन्ना उनसे बड़ी गर्मजोशी से मिले। दोनों की आँखें नम थीं। दस मिनट तक कमरे में ख़ामोशी रही। फिर शकीला बानो भोपाल ने अपने ग़ज़ल संग्रह की क़िताब उन्हें दी। क़िताब पाकर राजेश खन्ना चहक उठे। दोनों ने साथ में काली चाय पी। इस बीच ज्यादातर शकीला बानो की सेहत को लेकर दोनों के बीच ज़्यादा बात हुई। राजेश खन्ना सेहतयाबी की दुआ करने के साथ विदा हुए। ख़ास बात ये थी कि राजेश खन्ना के आने पर शकीला आपा ने घर में कोई ख़ास इंतज़ाम नहीं किया था। उनका मानना था कि हम जैसे और जिस हाल में रहते हैं, उसी कैफ़ियत में मिलना अच्छा है। दोनों के बीच बहन-भाई का रिश्ता रहा। राजेश खन्ना भी शकीला बानो भोपाली को आपा कहते थे। इस लम्हे का मैं गवाह हूँ।

जानकारों की मानें तो खास तौर पर साँझ की बेला, आलम आरा, फौलादी मुक्का, राँग नंबर, टैक्सी ड्राइवर, परियों की शहजादी, गद्दार, चोरों की बारात, सरहदी लुटेरा, आज और कल, डाकू मान सिंह, दस्तक, मुंबई का बाबू, जीनत, सीआईडी जैसी फ़िल्मों के लिए उन्होंने अपनी आवाज़ दी। हिंदी, उर्दू के अलावा गुजराती में भी कव्वाली गाई हैं।

पर एक अफ़सोस है। भोपाल को उन्होंने टूटकर चाहा लेकिन भोपालियों ने उनकी मोहब्बत का कर्ज़ अदा नहीं किया। इस बात का गिला है कि राज्य शासन ने भी उनकी कद्र नहीं की। भारत सरकार ने भी पद्मश्री के लायक नहीं समझा। सरकारी एवं ग़ैर सरकारी स्तर पर आपा को लेकर चुप्पी एहसानफ़रामोशी की इंतिहा है। वो हिंदुस्तान की पहली ऐसी महिला थी, जिन्होंने सामाजिक बेड़ियों को तोड़कर महिला सशक्तिकरण को नई दिशा दी। देश-दुनिया में भोपाल को ख़्याति दिलाई। रोशन ख़्याल होने के साथ उन्होंने मर्यादा की हद को कभी नहीं लांघा। भोपाल के लिए उनका दिल धड़कता था।

रुह में इबादत की तरह

कुछ आवाज़ें अहोभाव के साथ कंठ में अपना बसेरा तलाशती हैं। फिर उनके सुर का हर क़तरा इबादत की तरह महकता हुआ फिज़ाओं में फैल जाता है। जाड़े की वो पुरनम गुलाबी शाम भी तो प्रार्थना के ऐसे ही भाव-स्वरों में डूबी थी। संध्या पूजा का मुहूर्त था। खरज का शुद्ध सुर लगाते हरिहरन ने विराट को पुकारा- ''तुम्हीं मेरे रसना, तुम्हीं मेरे नैना, तुम्हीं मेरे श्रवणा...''। ताल-शिखरों, मंदिरों-मसज़िदों, मीनारों-मेहराबों और अदब-तहज़ीब की बेमिसाल रवायतों के शहर भोपाल में गायक-संगीतकार पद्मश्री हरिहरन की यह आमद एक मुद्दत बाद हुई। वज़ह बना- 'नादस्वरम्'।

हरिहरन ने इस आमंत्रण को मनपूर्वक स्वीकार किया। मुंबई से भोपाल की उड़ान भरी। सुबह-सुबह करुणाधाम के देवी-दरबार में हाज़िरी दी। मीडिया से बतियाये। 'रंग संवाद' के चुनिंदा अंकों की भेंट कुबूल की और संपादक विनय उपाध्याय से मैत्री भरा संवाद किया।

आध्यात्मिक जाग्रति की सिद्ध पीठ करुणाधाम आश्रम के इस सांस्कृतिक अनुष्ठान में शब्द-संगीत का अभिषेक करने अनंत सुब्रमणियम हरिहरन का आना संगीत के कद्रदानों के लिए ख़ुशगवार ख़बर थी। लिहाज़ा गर्म लिहाफ़ों से ढँके नौजवान और प्रौढ़ ही नहीं, उम्रदराज़ श्रोता भी रवीन्द्र भवन के मुक्ताकाश में सजी इस महफ़िल में खिंचे चले आए।

प्रसंगवश यह जानना ग़ैर ज़रुरी नहीं कि करूणाधाम आश्रम को सेवा, संवेदना, सहकार और साधना की अनमोल विरासत सौंपने वाले शक्ति के अनन्य साधक ब्रह्मलीन पंडित बालगोविंद शांडिल्य के जन्मदिवस की पूर्व संध्या हर बरस ऐसा ही सतरंगी उजियारा बिखरता है। यूँ एक अन्तर्लय जागती है। अनहद का आलोक भीतर कहीं धमनियों में उतरता है। यह भारतीय संस्कारों का ही तकाज़ा है कि करुणाधाम के वर्तमान पीठाधीश्वर पंडित सुदेश शांडिल्य ने अपने पिता की स्मृति का यह सुरीला दीपक रौशन रखा है।

यह शहर हरिहरन की पसंदीदा जगह है। इस नगरी से उनका पुराना सांस्कृतिक रिश्ता है। मरहूम सारंगी नवाज़ उस्ताद अब्दुल लतीफखाँ, संगीत सेवी श्याम मुंशी, शायर बशीर बद्र, संस्कृतिकर्मी सुरेश तांतेड़.... और भी कई नाम और चेहरे हरिहरन की याददाश्त में गहरे चस्पा है। वे इन शख़्सियतों का ज़िक्र करना नहीं भूले। उन्हें बाक़ायदा याद है कि 1977 में एक संगीत स्पर्धा में गाते हुए उन्हें संगीतकार जयदेव ने सुना और मुज़फ्फर अली की फ़िल्म 'गमन' में पार्श्व गायन के लिए चुन लिया और इस घटना के ठीक बाद भोपाल की संस्था अभिनव कला परिषद ने हरिहरन को 'कल के कलाकार' कार्यक्रम में आमंत्रित किया था। ये वही रवीन्द्र भवन का परिसर था जहाँ
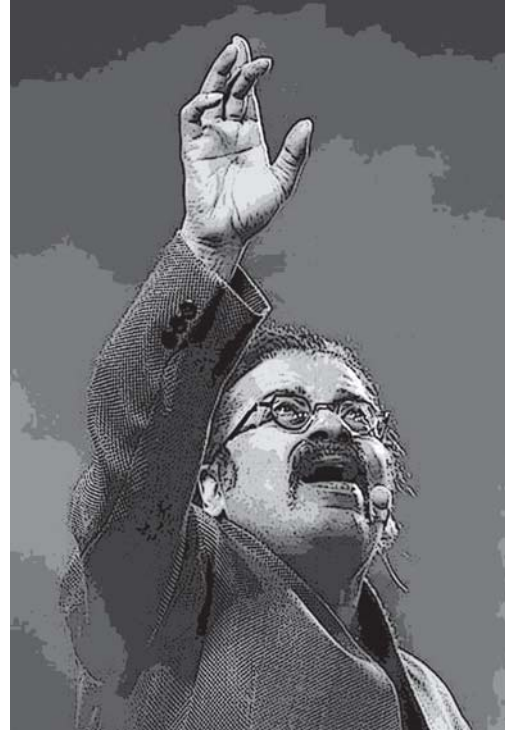
एक नौजवान फ़नकार अपने सुनहरे कल की आहटों को संजोये क़रीब चालीस साल पहले शायरी और मौसिक़ी की महफ़िल में सामयिन के सामने नमूदार था। तालीम, रियाज़ ज़िद, जुनून और जज़्बा ही था कि हरिहरन के सुर निखरते गये। संगीत की समझ गहराती गयी और कामयाबी उन्हें गले लगाते रही। हरिहरन ने इस धारणा को ध्वस्त किया कि दक्षिण भारत की आबो-हवा में परवरिश पाने वाला फ़नकार हिन्दी-उर्दू की चौखट पर बमुश्किल ही ठहर पाता है। हरिहरन का हौसला और यक़ीन ही था कि वे मौसिक़ी के जिस इलाक़े में गये, फ़तह पायी। मलयालम, कन्नड़, बांग्ला, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी और अंग्रेज़ी का गीत-संगीत गले में पनाह पाता रहा। गीत, ग़ज़ल, भजन.... जिस जॉनर में दाखिल हुए गहरे तक डूबे-उतराए। राग-रागिनियों में बंधी बंदिशों की गमकदार तानों और उठते-गिरते सरगम से लेकर ग़ज़ल के पुरकशिश अहसास और गीतों में लहराती मीठी मादक तरंगों को हरिहरन अनायास ही अंजोर लेते हैं। वे पॉप और जॉर्ज के साथ इंडियन फ्यूज़न करते हुए सारी सरहदें सात सुरों में समेट लेते हैं। वे कहते हैं कि सुर व्यक्तित्व को निखारता है। हमारे इमोशंस को, भीतर के रस-भाव को जगाता है। नौ रस संगीत के सात सुरों में छलक उठते हैं। हरिहरन अपना तजुरबा साझा करते हुए बताते हैं कि हिन्दुस्तान ही नहीं दुनिया के किसी भी मुल्क के इंसान को लें, नौ रस हर मनुष्य के भीतर मौजूद हैं। सुर की सोहबत में आकर ये रस जाग उठते हैं। बस, गायक या वादक के सुर में वो ताक़त होना ज़रुरी है। ये कुव्वत या कौशल लगातार रियाज़ और विनम्रता से हासिल होते हैं। शास्त्रीय संगीत की अहमियत यहाँ बढ़ जाती है जो हर सुर को बड़ी ही शिद्दत से बरतने का सलीका सिखाता है।

हरिहरन के फ़न की हैसियत उनके इन विचारों के आसपास तौली जा सकती है जो उनके गान-व्यक्तित्व में बहुत साफ़ झलकती। उन्होंने हर क़िस्म का संगीत सुना है, गुना है और अपनी तरह उसे हज़ारों बंदिशों में बरता है। वे नई नस्ल के कलाकारों को भी यही मशविरा देते हैं कि कुदरत ने अगर उन्हें सौभाग्य से अच्छी आवाज़ और सुर की समझ दी है तो अच्छे गुरु-उस्ताद के पास जाकर तालीम लें, रियाज़ करें। मंच, महफिल, तालियों, शाबाशियों और ईनाम पाकर कम उम्र में गुमराह न हो जाएँ।

हरिहरन का कहना है कि किसी भी मंच पर ईश्वर का अपमान कर टीआरपी बटोरना ठीक नहीं है। यदि कोई कलाकार ऐसा कर रहा है तो इस प्रवृत्ति पर रोक लगनी चाहिए। कुनाल कामरा और मुनव्वर फारुखी जैसे कामेडियन को एक बड़े नेता द्वारा मप्र आमंत्रित करने के सवाल पर उन्होंने सिर्फ इतना कहा कि सकारात्मक ऊर्जा को स्वीकार करें और नकारात्मक ऊर्जा को रोकें। उन्होंने कहा कि संगीत के क्षेत्र में कई बदलाव आए हैं। आज रियलिटी शोज़ के माध्यम से बच्चों को अच्छा एक्सपोज़र मिलता है लेकिन इन मंचों से निकले बच्चे हमेशा क़ामयाब गायक नहीं बनते हैं, जबकि वे ख़ुद को गायक समझने लगते हैं और बदक़िस्मती से आगे सीखना छोड़ देते हैं। संगीत अनवरत सीखने की प्रक्रिया है। रियाज़ कभी न छोड़ें। उन्होंने कहा कि कुछ संगीत गुरु भी बच्चों को गुमराह कर रहे हैं। रिमिक्स के चलन को लेकर हरिहरन का कहना है कि इसमें कोई बुराई नहीं है, लेकिन पुराने गानों को उनकी गरिमा के साथ प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

संगीत का बाज़ार, ग्लेमर, शोहरत, नए प्रयोग और सोशल मीडिया पर टीआरपी के फेर में पड़े नए कलाकारों को हरिहरन की सीख यही है कि लंबे समय तक अगर आपको जनता के बीच अपनी मौजूदगी

तालीम, रियाज़ ज़िद, जुनून और जज़्बा ही था कि हरिहरन के सुर निखरते गये। संगीत की समझ गहराती गयी और कामयाबी उन्हें गले लगाते रही। हरिहरन ने इस धारणा को ध्वस्त किया कि दक्षिण भारत की आबो-हवा में परवरिश पाने वाला फ़नकार हिन्दी-उर्दू की चौखट पर बमुश्किल ठहर पाता है। हरिहरन का हौसला और यक़ीन ही था कि वे मौसिक़ी के जिस इलाक़े में गये, फ़तह पायी। मलयालम, कन्नड़, बांग्ला, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी और अंग्रेज़ी का गीत-संगीत गले में पनाह पाता रहा। गीत, ग़ज़ल, भजन.... जिस जॉनर में दाखिल हुए गहरे तक डूबे-उतराए।

बनाए रखना है तो लंबे समय तक रियाज़ और धीरज भी बनाए रखना होगा। मीठा, कर्णप्रिय और सुकून देने वाला संगीत समर्पण और तपस्या से आता है। एक संगीतकार का यह फर्ज़ भी है कि वह समाज को सुरीला संस्कार दे। श्रोताओं को सुरों की अहमियत से वाकिफ़ कराए। हरिहरन कहते हैं कि उन्होंने भी अपनी गायिकी में और प्रस्तुति में कई प्रयोग किए लेकिन सुरों की शुद्धता, उनकी पाकीज़गी से समझौता नहीं किया। उनके इस कहे की तस्दीक उनके गाये बेशुमार नग़मे हैं। अनगिनत महफ़िलें हैं। कभी वे उस्ताद ज़ाकिर हुसैन के साथ नुमाया होते हैं, कभी ए.आर. रहमान की संगत में तमिल फ़िल्मों का रुख भी कर लेते हैं। कभी आशा भोसले जैसी अग्रणी गायिका के साथ ग़ज़लों का सफ़र तय करते हैं। मणिरत्नम् की 'रोज़ा' से लेकर 'बॉर्डर' जैसी बहुचर्चित फ़िल्मों में पार्श्व गायन करते हुए राष्ट्रीय पुरस्कार के हक़दार बनते हैं।

हरिहरन ने अपनी शख़्सियत को कुछ इस तरह गढ़ा है कि विवादों ने कभी उनकी चौखट पर दस्तक नहीं दी। भारतीयता उनके पोर-पोर में समायी है। ईश्वर के प्रति अनन्य आस्था और भारतीय जीवन मूल्यों का विश्वास लेकर वे नए ज़माने के साथ बड़ी शिद्दत से अपना राब्ता क़ायम कर लेते हैं। वे पहला गुरु अपनी माँ अलमेलु मणि को मानते हैं जिन्होंने अच्छी परवरिश के बीच हरिहरन को बड़ा किया। उनकी चाहत का भविष्य उन्हें सौंपा। यही वजह है कि हरिहरन ने भी अपने दो बेटों को उनके मनमाफ़िक केरियर बनाने की आज़ादी दी। एक बेटा अक्षय म्यूज़िक प्रोड्यूसर है तो दूसरे बेटे करण को अभिनय की दुनिया रास आयी है।

हरिहरन मितभाषी है लेकिन कम बोलकर भी वे अलहदा और उम्दा कहते हैं। उनकी ही गायी ग़ज़ल का ये शेर उनकी फ़ितरत को बयां करता है- ''जब कभी बोलना, वक़्त पर बोलना/मुद्दतों सोचना, मुख़्तसर बोलना''। हरिहरन की हसरत है कि वे इबादत की तरह रुह में महकते रहें!

हरिहरन और 'रंग संवाद'

यादें-बातें

दो क़िस्से ग़ालिब के

शकील ख़ान

ग़ालिब का हिंदी में अर्थ तलाशें तो जो शब्द सामने आते हैं वो हैं- छाया हुआ, हावी, प्रभावी, विजयी, श्रेष्ठ। 27 दिसम्बर 1796 को आगरा शहर जन्मे मिर्ज़ा असद उल्लाह बेग ख़ान उर्फ ग़ालिब ने अपनी शायरी से उपनाम ग़ालिब को सच्चे अर्थ में सही साबित किया, ताउम्र साबित करते रहे। आज 224 सालों बाद भी शायरी पसंद लोगों के दिलो दिमाग पर वो पूरी तरह छाए हुए हैं। इस ज्ञान ने उनकी शायरी को बहुत रिच किया। शुरुआती दौर में ग़ालिब उर्दू के क्लिष्ट शब्दों का उपयोग करते थे इसलिए उनकी शायरी बड़े-बड़े लोगों के सिर से ऊपर निकल जाया करती थी। बाद में उन्होंने अपेक्षाकृत आसान अलफाज़ों का इस्तेमाल शुरु किया, लेकिन बातें उनमें भी गहरी ही थीं। इसके बाद तो हालात ये हुए कि ग़ालिब की पहचान मुशायरा लूटने वाले शायर की बन गई। दो क़िस्से, जो ग़ालिब की इन्हीं ख़ासियत को सामने लाते हैं।

पहला किस्सा... ग़ालिब दिल्ली से आगरा शिफ्ट हो चुके थे। एक बार उन्हें बहादुर शाह ज़फर के दरबार में होने वाले मुशायरे में शामिल होने की दावत मिली। ग़ालिब के दोस्त और घरवाले बहुत खुश थे कि ग़ालिब तो वहाँ से वाह-वाही लेकर ही लौटेंगे और बादशाह की नज़र में भी आ जाएँगे। बहादुर शाह ज़फर शायरी के शौकीन थे और उनके दरबार में मुशायरे होते रहते थे।

बादशाह के उस्ताद मशहूर शायर शेख इब्राहीम जोक थे। शायर मोमिन भी उस दरबार की रौनक हुआ करते थे। ग़ालिब ने महफ़िल में जो ग़ज़ल सुनाई वो ये थी- नक्श फरियादी है किसकी शोखी-ए-तहरीर का, कागजी है पैराहन हर पैकर-ए-तस्वीर का, काव-काव-सख्त-जानी हाल-ए-तनहाई न पूछ...'

उनकी इस ग़ज़ल को कोई समझ नहीं पाया और भरी महफ़िल उनका मज़ाक बनाया गया। मिर्ज़ा नौशां (ग़ालिब) ने सिर्फ मतला और मक्ता यानि प्रारंभिक और आखिरी शेर सुनाया और मुशायरा छोड़कर चले गए।

दूसरा क़िस्सा... फिर इसी दरबार के मुशायरे का है। यहाँ ग़ालिब ने जिन हालात में जो ग़ज़ल सुनाई वो साबित करता है ग़ालिब, क्यों महान शायर के ख़िताब से नवाजे गए। दरअसल हुआ यूँ था कि एक बार मिर्ज़ा नौशां बाज़ार में कुछ लोगों के साथ बैठे हुए हँसी ठट्टा कर रहे थे। तभी उस्ताद जोक की सवारी वहाँ से गुजरी।

किसी ने मिर्ज़ा को कहा- देखो उस्ताद जोक जा रहे हैं। मिर्ज़ा ने जोक पर व्यंग्य कसते हुए जोर से कहा- 'बना है शह का मुसाहिब (बादशाह का खास) फिरे है इतराता।'

इस जुमले को जोक और उनके साथ के लोगों ने भी सुना। जोक ठहरे बादशाह के उस्ताद, सो बुरा लगना स्वाभाविक था। जोक शातिर थे, उन्होंने बदले की गरज से चमचों से कहा- अगले हफ्ते महल में मुशायरा है, उसकी दावत मिर्ज़ा को दे दो और बादशाह के सामने बाज़ार वाला किस्सा दोहरा देना। चमचे बोले जरूर हुज़ूर मिर्ज़ा नौशां को पिछली बार से ज्यादा बेइज्जत कर करके निकालेंगे मुशायरे से।
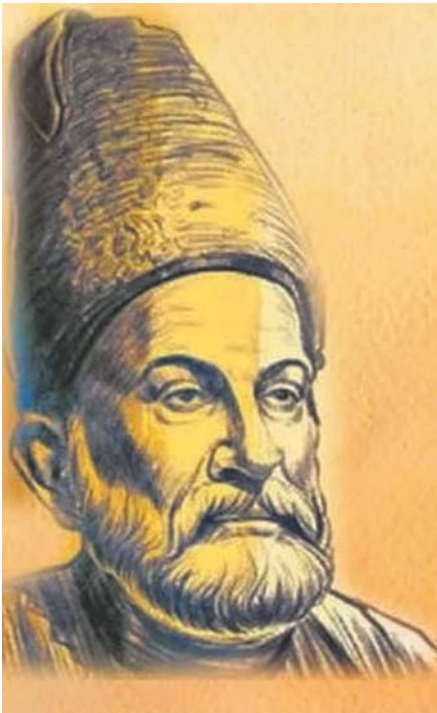
मुशायरे की शुरुआत में बादशाह बहादुर शाह ज़फर ने सबका स्वागत किया और कहा कि कुछ शायर हमारे उस्ताद जोक पर फ़िकरा कसते हैं, आगे ऐसा न हो।

योजना के मुताबिक जोक का एक चमचा बोला– नहीं हुजूर उस्ताद की शान में ऐसी गुस्ताख़ी कोई नहीं कर सकता।

दूसरे ने जवाब दिया– मिर्ज़ा नौशां ने सरेराह उस्ताद पर जुमला कसा है और कहा है 'बना है शाह का मुसाहिब फिरे है इतराता।'

बादशाह ने नाराज होकर पूछा– 'मिर्ज़ा नोशां क्या यह सच है।'

जवाब में मिर्ज़ा ग़ालिब बोले– 'जी हुजूर सच है, मेरे मक्ते का मिसरा ऊला है।' यानि अंतिम शेर की पहली लाइन।

बादशाह ने पूरा मक्ता (शेर) सुनाने को कहा। जवाब में ग़ालिब ने शेर सुनाया, जो इस तरह था 'बना है शाह का मुसाहिब फिरे है इतराता, वगरना शहर में 'ग़ालिब' की आबरु क्या है।'

वाह–वाह से महफिल गूँज उठी। जोक को तो पता था कि शेर की दूसरी लाइन मिर्ज़ा ग़ालिब ने अभी गढ़ी है, सो फंसाने की दृष्टि से कहा– 'अगर मक्ता इतना खूबसूरत है तो पूरी ग़ज़ल क्या होगी, सुनी जाए।'

सो बादशाह ने कहा– आज के मुशायरे का आगाज़ ग़ालिब की इसी ग़ज़ल से होगा।

ग़ालिब ने जेब से एक परचा निकाला और ग़ज़ल पढ़ना शुरु की– 'हरेक बात पे कहते तुम, तू क्या है, तुम्हीं कहो ये अंदाज़–ए–गुफ्तगू क्या है'

अगला शेर– 'रगों में दौड़ते–फिरने के हम नहीं कायल, जब आँख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है।'

ग़ज़ल ख़त्म हुई। ग़ालिब जिस कागज़ में देखकर ग़ज़ल सुना रहे थे, वो कागज़ उन्होंने मुस्कुराते हुए जोक के खास चमचे की तरफ बढ़ा दिया, जिसने इस क़िस्से को बादशाह तक पहुँचाने का जाल रचा था। वो ये देखकर हैरान रह गया कि परचा तो कोरा था, दोनों तरफ से कोरा।

दरअसल, ग़ालिब ने वो ग़ज़ल हाथ के हाथ तैयार की थी और बिना लिखे ही सीधे सुना दी थी। बाद में, इस ग़ज़ल के तमाम शेर बहुत ज्यादा मशहूर हुए ख़ासतौर पर 'रगों' वाला शेर। यह ग़ालिब की बेहतरीन ग़ज़लों में शामिल की गई।

यानि एक बहुत ही शानदार और ख़ूबसूरत ग़ज़ल ग़ालिब ने बिना किसी तैयारी के यूँ ही रच डाली थी। ऐसी ग़ज़ल जिसे बादशाह के साथ पूरी महफ़िल की दाद तो मिली ही ग़ालिब से खार खाए बैठे उस्ताद जोक की भी खुली और भरपूर दाद मिली। ऐसे कमाल के जादूगर शायर थे ग़ालिब।

वैसे खुल दिल से अपने दुश्मन की तारीफ के लिए जोक की दरियादिली की भी तारीफ की हकदार थी। बताते चलें ग़ालिब का यह क़िस्सा हमने गुलज़ार द्वारा दूरदर्शन के लिए बनाए गए सीरियल 'मिर्ज़ा ग़ालिब से उठाया है। गुलज़ार ने इस क़िस्से को बहुत ही ख़ूबसूरत अंदाज़ में पेश किया है।

अलंकरण

संगीत विदुषी प्रभा अत्रे

कश्यप

संगीत के लिए तो कई जन्म चाहिए, एक जन्म की तो बात है नहीं। एक जन्म में एक सुर भी हाथ नहीं आता। पता नहीं और कितने जन्म मैंने लिये तो इस जन्म में संगीतकार बनी। पूर्व जन्म का कुछ होगा मेरे पास तभी मैं इतना कर पायी। आशीर्वाद है गुरुओं का और श्रोताओं की शुभेच्छा। यह सब अगर नहीं मिलता तो मैं इस मुक़ाम तक नहीं पहुँच पाती।

संगीत शिक्षण पद्धति सुधार ज़रुरी

हिन्दुस्तानी संगीत की सुरम्य परंपरा का 'प्रभा मंडल' एक बार फिर जगमग हो उठा है। नए बरस का आगाज़ इससे बेहतर भला क्या होगा! ख़बर मिली कि भारत सरकार के सम्मानों की सूचि में संगीत विदुषी प्रभा अत्रे को पद्मभूषण से अलंकृत किया जा रहा है। 'ताई' की तपस्या को मिले इस मान से सांस्कृतिक पर्यावरण में हर्ष है।

किराना घराने की विरासत को अपने कंठ-कौशल से कल्पनाशीलता विस्तार देने वाली प्रभा अपनी स्वरमयी आभा के बीच हमारे वक्ती दौर का सुरीला विश्वास बनी हुई हैं। नब्बे की आयु में भी उनकी सक्रियता और आंतरिक मनोबल चकित कर देने वाला है। वे अपने गुरु स्वर्गीय सुरेश बाबू माने और हीराबाई बड़ोदकर से हासिल कीमती सीखों को याद करती हैं। उनके ऋण को मस्तक पर उठाए उन उपलब्धियों पर गर्व करती हैं जो गुरु के आशीष के बगैर संभव नहीं थीं।

प्रभा अत्रे... माने कला के कई सारे रंगों से मिलकर पकी हुई वो प्रतिभा जो गायन, लेखन, अध्यापन और अभिनय में प्रवीण होकर अपना विलक्षण व्यक्तित्व गढ़ती हैं। रेडियो और दूरदर्शन से लेकर सारस्वत सभाओं तक जिसकी कंठ माधुरी में बिरमने अनगिनत श्रोताओं का हुजूम उमड़ता है। पद्मश्री, पद्मभूषण और संगीत नाटक अकादेमी सम्मान उनकी साधना और चिंतन-मनन के सतत प्रवाह में नई हिलोर जगाते हैं। बार-बार उनकी गायी बंदिशों में डूबने-उतराने को मन करता है- ''नदिया धीरे बहो.... कौन गली गयो श्याम... जमुना किनारे मेरा गाँव....। ठुमरी, खमाज और दादरा की लय-लोच और लालित्य के राग-रस में भीगकर अनोखे आनंद का आकाश खुलने लगता है। यह सब सुनते-गुनते संगीत के रहस्य को, उसकी भाव-संपदा को, उसके आस्वाद के धरातल को नए विमर्श में साझा करने की उत्कंठा होती है और ऐसे में प्रभा अत्रे की क़िताब 'स्वरमयी' किसी कुंजी की तरह समाधान के द्वार खोल देती है। अपने जीवन व्यापी अनुभवों का सार समेटे वाग्देवी की यह विनम्र उपासक जब अपनी जीवन यात्रा के विभिन्न पड़ावों को याद करती हैं तो संघर्ष चुनौतियों और कामयाबियों के कई मंज़र रौशन होने लगते हैं।

याद आती है, एक वासंती सुबह जब भोपाल के बड़े ताल के किनारे एक होटल में 'ताई' से मुलाक़ात हुई थी। साथ में आकाशवाणी भोपाल के कार्यक्रम अधिकारी और शास्त्रीय संगीत के गहरे जानकर रसिक चन्द्रशेखर मुंजे (अब स्मृति शेष) भी थे। क़रीब डेढ़ घंटे के वार्तालाप में 'ताई' ने हर सवाल का बेबाकी से जवाब दिया।

पहला सवाल, कि प्रभाजी परिवर्तन प्रकृति का नियम है। हर नया दौर अपने साथ सोच-विचार, चिन्तन का नया धरातल लेकर आता है। भारतीय शास्त्रीय संगीत के मौजूदा परिदृश्य पर नज़र डालें तो बदलाव वहाँ भी दिखाई देता है। इस नवाचार का कुछ लोग स्वागत करते दिखाई देते हैं तो कुछ परंपरावादी इसकी ख़िलाफ़त करते हैं। आपकी क्या राय है? ...प्रभाजी ने संयत होकर कहा- ''संगीत को भी समय के साथ जाना है। अगर हम सुनने वाले, गाने वाले बदल रहे हैं तो हमसे जो निर्माण होता है वह भी उसी ढंग का होगा। संगीत में यह सब व्यावसायिक दृष्टिकोण जुड़ जाने के कारण हुआ है। आज कंज्यूमर आइडिया आ गया है। ग्राहक सामने है। लेकिन कलाकार को ख़ुद को सोचना है कि उसे कितना बदलना है, श्रोता को अपने स्तर पर उठाना है कि नहीं। ऐसे वातावरण में महज़ संगीत को दोष देना ठीक नहीं है। संगीत अपनी जगह पर कायम है, क्योंकि शास्त्रीय संगीत शाश्वत है। उसमें जो शुद्धता है, जो डिग्निटी है और सौन्दर्य भी जो अपने आप में कायम है, उसको आप हाथ नहीं लगा सकते''।

इधर नई पीढ़ी के संगीतकारों को लेकर अक्सर कहा जाता है कि उनके पास धैर्य, समर्पण की कमी है। वे गंभीर रियाज़ से परहेज़ करते हैं।......और गुरुओं के पास भी सिखाने के लिए वक्त नहीं है। इस सवाल के जवाब में प्रभाजी ने शिव-हरि जैसी कामयाब जोड़ी का ज़िक्र किया। कहा कि ये अत्यंत व्यस्त कलाकार हैं। उनके पास सीखना भी तो मुश्किल है। यह भी ज़रुरी नहीं कि अच्छा गाने वाला या बजाने वाला अच्छा शिक्षक हो। यह भी ज़रुरी नहीं रहा कि आप गुरु के सान्निध्य में चौबीस घण्टे रहो और सीखो, टीचिंग-एड्स इतने हो गये हैं कि उसका सहारा लेकर आप सीख सकते है। अगर आप में गहरी निष्ठा है, थोड़ा कुछ ज्ञान है, पोटेन्शियल कुछ है, तो आप यह कर सकते हैं। अब मेरे पास जितनी लड़कियाँ आ रही हैं, रोज़ाना तो उनको नहीं सिखा पा रही हूँ। पर मेरा फ़र्ज़ बनता है कि जो अच्छे स्टूडेण्ट्स हैं वे आगे बढ़ें।

बात विदेश यात्राओं की छिड़ी तो प्रभाजी ने निर्विकार भाव से कहा कि देखिए, आजकल तो कोई भी उठके चला जाता है विदेश। मैं तो अब डॉक्टर भी नहीं लगाती अपने नाम के आगे। डॉक्टर भी इतने हो गये हैं कि उसका कुछ मायना नहीं रहा।

बातचीत का सिरा विद्यालयीन और महाविद्यालयीन स्तर पर संगीत शिक्षण के पास पहुँचा। प्रभा अत्रे ने खुलकर कहा कि संगीत खाली सर्टिफिकेट से नहीं आता। सामने बाजा है और आपको गाना है। हमारी शिक्षण पद्धति में निश्चय ही सुधार की गुंजाइश है। मैं जहाँ पढ़ाती थी, वहाँ का पूरा सिलेबस मैंने चेंज किया था। जब मैं रिटायर हो गयी तो फिर से वही हाल। नये टॉपिक्स जो आये, उसके लिए रीडिंग मटेरियल्स तैयार करके रखा था, फिर भी ये हालत हुई। मेरे जाने के बाद फिर पूरा का पूरा चेंज किया। कई सेमीनारों में मैंने इस मुद्दे को गंभीरता से उठाया लेकिन कुछ न हुआ।

संगीत के साथ यह जन्म गुज़ारते हुए क्या अनुभूति होती है? ताई इस सवाल पर संज़ीदा हो जाती हैं- ''संगीत के लिए तो कई जन्म चाहिए, एक जन्म की तो बात है नहीं। एक जन्म में एक सुर भी हाथ नहीं आता। पता नहीं और कितने जन्म मैंने ले लिये तो इस जन्म में संगीतकार बनी। घर में बिल्कुल संगीत नहीं था। हमारे घर में माताजी-पिताजी दोनों टीचर थे। उन्होंने गाना सुना भी नहीं था तो ज़ाहिर है कि पूर्व जन्म का कुछ होगा मेरे पास तभी मैं इतना कर पायी। और आशीर्वाद है गुरुओं के, श्रोताओं की शुभेच्छा मेरे साथ हैं। यह सब अगर नहीं मिलता तो मैं यहाँ तक पहुँचती नहीं।

वे कहती हैं कि संगीत का आनंद हर कोई उठाता है, अपने-अपने स्तर पर समझता है उसको। लेकिन जब कोई समीक्षात्मक ढंग से लिखे कि इस राग में यह स्वर ऐसा हुआ, वैसा हुआ तब मैं चेलेंज करुँगी। जब आप शास्त्र या शैली पर मत व्यक्त करेंगे तो हम उस पर शास्त्रार्थ करेंगे। हम आसानी से स्वीकार नहीं करेंगे। समीक्षा रिस्पांसिबल काम है। वह गायक के बारे में समाज की धारणा तैयार करती है। हमें उसे गंभीरता से लेना चाहिए।

इस लंबे संवाद में प्रभाजी सम्मान लौटाने की वृत्ति पर भी खुलकर बोलीं। उन्हें इस बात का एतराज़ है कि सम्मान लेकर फिर वापस किये जाएँ! जब पद्म अवार्ड के लिए आपका चुनाव होता है तो आपसे पूछा जाता है कि आप लेंगे या नहीं। उस वक्त हम लोग बोल सकते हैं कि हमको नहीं लेना है। पर अगर वे ऐसा गुपचुप करें तो पब्लिसिटी नहीं होगी। अगर आपका नाम एनाउंस किया और फिर आपने वापस किया तो वह अलग तरह से मीडिया में आयेगा। मेरा पद्मभूषण बहुत विलंब से आया। लेकिन जब ख़बर मिली तो मैंने सोचा कि मैं अपने लिए नहीं ले रही हूँ। मेरे माँ-बाप हैं उनको खुशी होगी। मेरे फ्रेण्ड्स प्रसन्न होंगे। यह मेरे हाथ में था कि लेना है कि नहीं। मुझे उस वक्त मालूम हुआ कि लिस्ट में मेरा नाम दस वर्ष से आ रहा है।

अलंकरण: दुर्गाबाई व्याम

खिल उठे आदिम रंग

गोंड परधान जनजातीय परिवेश और उसकी वाचिक परंपरा को चित्रों में सिरजने वाली दुर्गाबाई व्याम एक ऐसी कलाकार के रुप में प्रतिष्ठित हैं जिसने परिश्रम और मनोयोगपूर्वक अपनी वंशगत कला को विश्वव्यापी बनाने में अनन्य योगदान दिया है। हाल ही भारत सरकार ने पद्मश्री अलंकरण के लिए उनका चयन किया है। 20 फरवरी 1974 को मध्यप्रदेश के डिंडोरी ज़िले के छोटे से गाँव बरबसपुर में जन्मी दुर्गाबाई के लिए सृजन का परिसर अलग से उपलब्ध कराई गई जगह नहीं बल्कि स्वयं को मिले प्रकृति प्रदत्त जीवन की बहुमूल्य उपलब्धि है जिसे उन्होंने अपनी स्मृति, कल्पना और साधना के उजास भरे रंगों से सींचा है। वे गोंड परधान कथा गायन की परंपरा को नए दौर में पहले-पहल चित्रित करने वाले विलक्षण आदिवासी चित्रकार जनगढ़सिंह श्याम की लीक पर चलते हुए विरासत को आत्मसात करने आगे आई। लगभग तीन दशकों के कला जीवन में दुर्गाबाई ने सृजन और समृद्धि के अनेक सोपान तय किए हैं।

गोंड परंपरा की पहली हिलोर दुर्गाबाई के मन में तब जागी जब वे बचपन में अपनी दादी-नानी से कहानियाँ सुनती। इन कथाओं में बड़ा देव, महरिलिन देवी, चूल्हा देव, धुर्री देवी और रातमाई मुखुड़ी का ज़िक्र होता, पशु-पक्षी, जंगली वनस्पतियों और ग्रहों-नक्षत्रों का वर्णन होता। जब दुर्गाबाई सयानी हुई और चित्रांकन के लिए उनके हाथों ने कलम उठाई तो कहानियों में निहित विषय फलक पर उभर आए। दुर्गाबाई के चित्रों में परधान कथा-गायन के प्रसंगों को उद्घाटित होता देखना एक ललित अनुभूति है। वे रंगों की भाषा, सटीक बिंबों और सार्थक प्रतीकों का इस्तेमाल करते हुए अपने धरती से जुड़े आदिम विश्वास को

प्रतिष्ठित करती हैं। कहा जा सकता है कि प्रकृति पर गहन विश्वास का जीवंत साक्ष्य है दुर्गाबाई का सृजन। उनके चित्र प्रकृति को एक विचार की तरह जीने और पीढ़ियों को सौंपने का रचनात्मक दायित्व हैं, जहाँ परंपरा को बहुत बारीक नज़र से देखते हुए उसके सच को चिन्हित करने की उत्साही लगन है।

गोंड चित्रों की शैलीगत विशेषता और उनके सुगढ़ स्वरुपों को मौलिक संस्पर्श देने का यह अबाध सिलसिला दुर्गाबाई ने अपने चित्रकार पति सुभाष व्याम और वरिष्ठ चित्रकार नर्मदाप्रसाद तेकाम की संगत में जारी रखा है। भारत के अनेक कला संग्रहालयों तथा महत्वपूर्ण व्यक्तियों के निजी संग्रहों में दुर्गाबाई के चित्र संग्रहित हैं। इसके अलावा अमेरिका, लंदन, स्पेन, इटली, न्यूज़ीलैंड आदि देशों में भी इस गोंड महिला चित्रकार की कलाकृतियों को प्रदर्शनियों तथा म्यूज़ियम में अवलोकानार्थ प्रस्तुत किया गया है। दुर्गा ने भारत के अनेक कला शिविरों, मेलों और कार्यशालाओं में हिस्सेदारी की है। चेन्नई के तारा पब्लिकेशन तथा कुछ पत्रिकाओं के लिए विशेष रुप से गोंड चित्रशैली के चित्र तैयार किए हैं। म.प्र. हस्त शिल्प विकास निगम और इंदिरा गांधी जनजातीय कला तथा संस्कृति सम्मानों से अलंकृत किया जा चुका है।

मध्यप्रदेश शासन ने दुर्गाबाई व्याम को गोंड परधान पारंपरिक आधार को चित्रकला के माध्यम से संरक्षित करने, उन्हें परिश्रम और प्रविधिपूर्वक लोकव्यापी सम्मान प्रदान करने तथा कथा गायन की वाचिक शैली को दस्तावेज़ी स्वरुप देने में उनके अभूतपूर्व योगदान की प्रशंसा करते हुए वर्ष 2009 में रानी दुर्गावती राष्ट्रीय सम्मान से भी विभूषित किया है। **-अभिषेक**
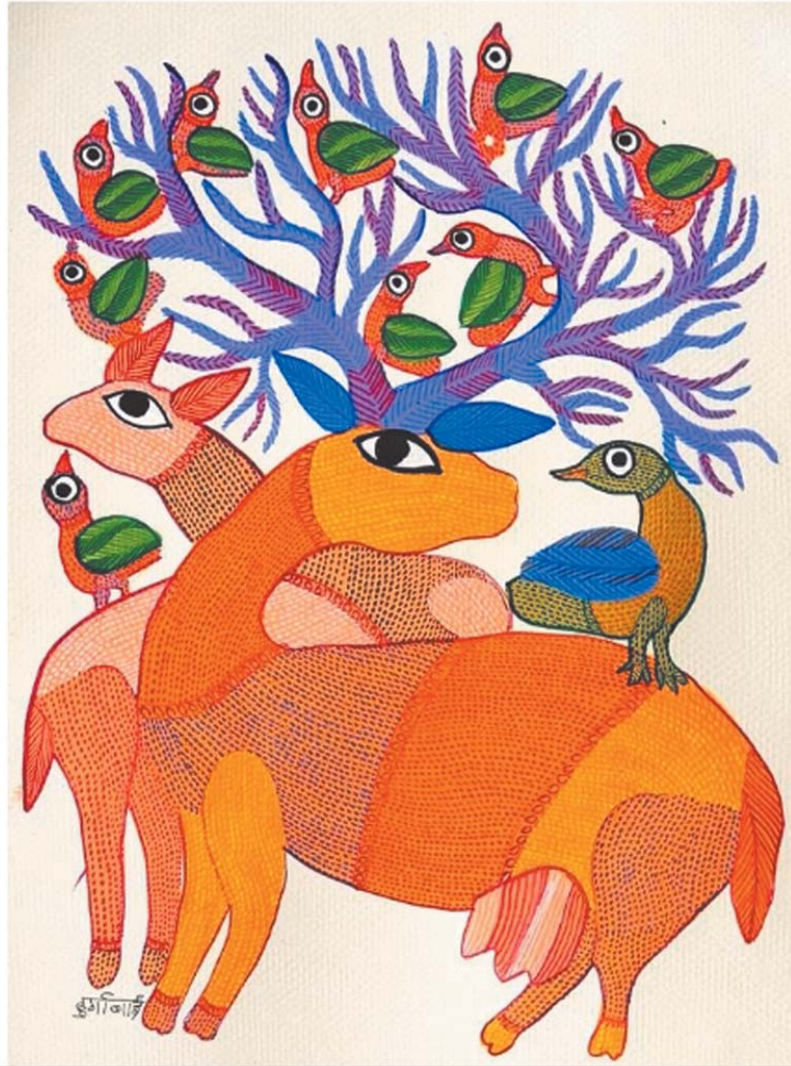
लोक नर्तक रामसहाय पाण्डे

लौटी 'राई' की रौनक

कभी हिकारत और बदनामी का कलंक ढोने वाले एक बुजुर्ग लोक कलाकार के माथे पर भारत की सरकार ने मान का मुकुट पहनाया है। बुंदेलखंड की रंगभूमि पर जैसे वासंती रंग खिलखिला उठे हैं। सुर्खियों में एक बार फिर पंडित रामसहाय पाण्डे का नाम है जिन्हें पद्मश्री अलंकरण के लिए चुना गया है। ये वही रामसहाय हैं जो लोक नर्तक हैं। राई की रंगतों के लिए मशहूर है। मृदंग से उठती थापों पर बेड़नियों के संग थिरकते हुए प्रेम और श्रृंगार का वो तिलिस्म जगाते हैं कि माहौल में उमंगों की लहरें तैरने लगती हैं। ... लेकिन ये सफ़र आसान तो नहीं था। पंडितजी को अपने ही कुटुंब और समाज से जूझना पड़ा। वजह, कि राई के साथ बेड़नी की संगत को बिरादरी बरसों से बुरी नज़र से देखती आई है। इधर राई पर लगे व्यावसायिक ग्रहण से भी उसका वजूद संदिग्ध हुआ लेकिन पाण्डे का प्रण डिगा नहीं। वे अपनी क़सम पर डटे रहे। देश–दुनिया के मंचों पर राई की रौनक बिखेरते रहे और अब जल्दी ही राष्ट्रपति भवन की चार दीवारी में राम सहाय सम्मानित होंगे। हाल ही अपने गृह राज्य मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री ने सौजन्य भेंट के लिए रामसहाय को आमंत्रित किया। कला पत्रकार **दीपक पगारे** ने इस मौके पर उनसे संवाद किया। – संपादक

पाण्डे ने व्यथित होकर कहा कि आज लोक नृत्य और लोक गायन 'राई' को पैसा कमाने का जरिया बना लिया गया है। इसके लिए स्टूडियो में आधुनिक वाद्ययंत्रों की सहायता से गीत–नृत्य की रिकॉर्डिंग की जाती है और उसमें आपत्तिजनक सामग्री डाली जाती है। इससे यह लोक कला बदनाम हो रही है। हम मीडिया और सरकार से मांग करते हैं कि 'राई' के नाम पर चल रही इस व्यापारिकता पर रोक लगाई जाये।

राई पर लगे व्यावसायिक ग्रहण से भी उसका वजूद संदिग्ध हुआ लेकिन पाण्डे का प्रण डिगा नहीं। वे अपनी क़सम पर डटे रहे। देश-दुनिया के मंचों पर राई की रौनक बिखेरते रहे और अब जल्दी ही राष्ट्रपति भवन की चार दीवारी में राम सहाय सम्मानित होंगे।

राम सहाय यह स्पष्ट करते हैं कि राई नृत्य और राई लोक गायन में अंतर है। इसमें किसी प्रकार की आपत्तिजनक सामग्री नहीं होती है। यह विशुद्ध लोक नृत्य है। बुंदेलखंड के गांवों में आज भी रात-रात भर स्त्री-पुरुष साथ में बैठकर इस कला का आनंद लेते हैं। फिर इसमें क्या आपत्तिजनक है? यहाँ तक कि नर्तकियाँ सिर से पैर तक ढँकी रहती है। लेकिन सिर्फ़ व्यावसायिक लाभ के चलते इस कला के मूल स्वरूप से जो छेड़छाड़ की गई उसने इसकी साख को आघात पहुँचाया है।

पाण्डे ने बताया- मैं क़रीब ग्यारह साल का था तब पहली बार इस नृत्य को देखा था और इस गान को सुना था। इसमें गूँजती मृदंग की थाप ने ऐसा सम्मोहित किया कि फिर इसका ही हो कर रहा गया। दुर्भाग्य से इस कला पर लगे आरोपों के चलते इसमें रुचि रखने वाले पुरुषों को उनकी पत्नियाँ रोकती हैं। पाण्डे इस प्रवाह में जोड़ते हैं कि कई परिवारों में कलह तक होता है लेकिन मेरी पत्नी जिनका निधन हो गया स्व. श्यामरानी पाण्डे मुझे राई गाने भेजती थी। उसका साथ मिला तो फिर समाज की परवाह नहीं की और इसी का परिणाम है कि मुझे देश ने कलाकार के रुप में स्वीकार किया और अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर प्रतिष्ठित किया। मैं मध्यप्रदेश के संस्कृति विभाग की आदिवासी लोक कला परिषद को कभी भूल नहीं पाऊँगा, जिसकी वजह से आज मैं यहाँ हूँ। जाने कितने लोकोत्सवों में उन्होंने मुझे राई दल के साथ प्रस्तुतियों के लिए आमंत्रित किया। मंच से मेरा नाम जैसे ही पुकारा जाता दर्शकों के बीच एक अलग खुशी की लहर दौड़ जाती। लोग दम साध कर हमारे प्रस्तुति देखते।

राई के मोह में गिरफ़्त रहने के कारण रामसहाय को समाज में कई तरह के लांछन मिले। परिवार में माता-पिता थे नहीं। बड़े भाई ने समाज के दबाब में घर से कई बार निकाल तक दिया। लेकिन भूखा-प्यासा रहकर भी उन्होंने अपनी साधना नहीं छोड़ी।

पाण्डे एक मज़ेदार क़िस्सा सुनाते हैं। ग्रामीण इलाकों में 'राई' के प्रति इस तरह की भ्रांतियाँ हैं कि इसमें रुचि रखने वाले उच्च वर्गा के लोगों को अच्छा नहीं माना जाता। इसके चलते मेरी शादी तक नहीं हो रही थी। मेरे बड़े भाई ने झूठ बोलकर कि अब इस क्षेत्र में राम सहाय नहीं है। शादी का रास्ता आसान किया। यही समस्या मेरी बेटियों के विवाह के लिए आईं।... वक़्त गुज़र जाता है, रह जाती है यादें।

शिखर सम्मान

मूर्ति शिल्पकार देवीलाल पाटीदार

देशज मूल्यों की हिमायत

रुपंकर के आधुनिक परिसर में देवीलाल पाटीदार किसी भी हड़बड़ी, होड़ और हल्लाबोल की हदबंदी से हटकर मनन की रुचियों का रुप रचने वाले गंभीर कलाकार हैं। मध्यप्रदेश के पश्चिम निमाड़ के देहाती परिवेश और ज़मीनी संस्कारों ने उनकी शख़्सियत पर ऐसा असर किया कि उन छापों को आज भी उनकी अभिव्यक्ति के मुहावरों में साफ पढ़ा जा सकता है। लगभग चार दशकों में फैली उनकी सर्जना नई, अनूठी और सार्थक कोशिशों की तस्दीक करती रही है। वे चित्र सिरजते हों या फिर मिट्टी की कोई मूरत वे गढ़ रहे हों, तकनीक और कौशल जो शक्लें अख़्तियार करते हैं उन पर देवीलाल के दस्तख़त जैसे ख़ुद बोल पड़ते हैं। शिखर सम्मान के लिए उनका चयन करते हुए मध्यप्रदेश की सरकार ने निश्चय ही एक जैनुईन कलाकार के पक्ष में मोहर लगायी। पाटीदार के सृजन और उनके विचार को यहाँ साझा कर रहे है- **विनय उपाध्याय**।

सजावट और निवेश का ज़रिया बनती जा रही आज की कला के आयातित आग्रहों तथा रातों-रात बाज़ी मार लेने के बनियाई समीकरणों से तौबा कर पाटीदार मनुष्यता को पुकार लगाने वाले देशज रचनाकर्म पर भरोसा करते हैं। कला-साहित्य के परिसरों में उनकी आवा-जाही तमाम ख़ानाबंदियों को तौबा कर दोस्ताना रिश्तों की मिसाल है। उनकी अभिरुचियों का आसमान बहुत फैला है। संगीत, नृत्य, नाटक और कविता-कहानी की बैठकों-महफ़िलों से लेकर मित्रों के बीच गप्प-गोष्ठियों के हँसी-ठहाकों में समान रूप से उनका मन रमता है। ज़िंदगी के केनवास पर बिखरे इन्हीं रंगों से पाटीदार ने अपनी बिंदास शख़्सियत को पेंट किया है। दरअसल देवीलाल एक प्रकृत कलाकार हैं। उनकी बुद्धि, उनका ज्ञान, विचार, अनुभव और प्रतिक्रियाएँ कभी भी उनकी कला के लिए बंधनकारी नहीं रहे। प्रकृति ही उनके सृजन का बुनियादी तत्व रहा है जिसकी लय में आबद्ध होकर वे जीवन के अबूझे रहस्यों के कपाट खोलते रहे हैं। पाटीदार अक्सर इस फ़िक्र से भरे

पेश आते हैं कि मनुष्य का भाव-संसार लगातार सिमट रहा हैं। प्रेम और करुणा के रंग काफूर हो रहे हैं। यह दौर भीषण संकट का है जब प्रकृति नष्ट हो रही है और मनुष्यता के पास भी अपनी असल पहचान को बचाये रखने की नैतिक ताक़त सिमट रही है। ऐसे में कला के पास जाकर ही बेचैनियों के समाधान संभव है।

कलाओं के मरकज़ भारत भवन के रुपंकर प्रभाग का ज़िम्मा देवीलाल पाटीदार के पास है। देश-देशांतर के मुख्तलिफ़ चित्रकारों, शिल्पियों और दीगर माध्यमों में सक्रिय कलाकारों के काम को वे बरसों से क़रीब से देखते रहे हैं। यही वजह है कि उनकी कलात्मक दृष्टि लगातार व्यापक, गहरी और पैनी भी हुई है। कला की दुनिया में आए बदलावों से वे वाबस्ता हैं। लिहाज़ा पाटीदार से संवाद करना हमेशा ही रोचक होता है। वे बेलाग बोलते हैं। इसलिए उनका कहा हमेशा काबिल-ए-ग़ौर होता है। मिट्टी से उन्हें बेइंतहा प्यार है। उनका मानना है कि भारतीय विचार मूलतः मिट्टी की महिमा से गुँथा है। मिट्टी में निखर आयी उनकी कलाकृतियों पर निगाह जाती है तो आकार और विचार का युग्म वहाँ दिखाई देता है। चित्रों में भी कमोबेश यही कौंध आकर्षित करती है। प्रसंगवश मुझे याद आती है वो खुली बातचीत जो रंगकर्मी राजकमल नायक और अनूप रंजन ने मिलकर पाटीदार जी से की थी। उनका मन्तव्य और गन्तव्य बहुत साफ़ नज़र आता है-

● जहाँ तक मैं समझता हूँ वंशगत अनुभव संसार किसी भी कला माध्यम से प्रति ज़्यादा विराट और संवेदनशील होता है। एक कुम्हार के लड़के में मिट्टी और कला की समझ और संवेदना कहीं अधिक गहरी होगी बनिस्बत कला की तालीम प्राप्त मेरे जैसे आर्टिस्ट से। यहाँ भेद शिक्षा और व्यवहारिक अनुभव का है। जैविक रुप से जानना और 'मेंटल लेवल' पर जानना दोनों अलग है।

एक उदाहरण देता हूँ- जिस आर्ट कॉलेज से आपने आर्ट सीखा, उसका सिलेबस लंदन आर्ट अकादमी का है। यही आपकी सामर्थ्य और दिशा निर्धारित कर देता है। उनमें चीज़ों को देखने और करने का नज़रिया ही एक तरह से बदल जाता है। वह आपको जीवन भर 'डॉमिनेट' करता है। मूल को जाने बिना ही आप नए सृजन में जुट जाते हैं, यह ग़लती हमसे हो जाती है। हमारा पारंपरिक काम शैलीगत है और उन शैलियों को जाने बिना ही हमने अपनी निजी शैली बनाने का काम किया। हमने यह भूल की कि सृजन के लिए जो आधुनिक मुहावरा मिला उसके दबाव में काम किया। हालांकि मैं यहाँ पर यह भी कहना चाहूँगा कि पिछली पीढ़ी पर ये दबाव ज्यादा था। हमारी पीढ़ी जो शिल्प में काम कर रही है उन पर इस दबाव का दबदबा नहीं है बल्कि कहना चाहूँगा कि उनका सृजन सामर्थ्य और साधना अधिक देशज है।

● हमारे वरिष्ठ कलाकारों में 'देशज' गुण कम ही देखने में आया है, टार्सो (धड़) या घोड़े जैसे विषयों तथा पोर्ट्रेट-लैन्डस्केप पर वे ज्यादा केन्द्रित रहे हैं। हमारा मूर्तिशिल्प, पत्थर माध्यम का, हेनरी मूल के आसपास ही 20-25 साल घूमता रहा। कुछ तो आज भी वहीं चक्कर लगा रहे हैं। हाँ, अपवाद हर जगह हैं। रामकिंकर वेज जैसे अलग तरह के लोग भी हैं जो मौलिक काम कर रहे हैं। उनका काम चिरपरिचित देशज बिम्ब है।

● सिरेमिक माध्यम के रूप में 'कामर्शियल' रहा है। 'आर्ट', में यह बहुत बाद में आया। सिरेमिक में कलात्मक अभिव्यक्ति एक तरह से नयी कोशिश है। मूर्तिकला में पत्थर, मिट्टी, लकड़ी, धातुओं में रंगों का वह समन्वय नहीं जो सिरेमिक में हैं। सिरेमिक माध्यम में तरह-तरह के रंग भी हैं और त्रिआयामी सामर्थ्य भी। इसीलिए मैं समझता हूँ कि यहाँ अभिव्यक्ति की ताक़त चित्र और मूर्ति दोनों मिलाकर काफी बढ़ जाती है। जहाँ तक माध्यम का प्रश्न है वह अपने में निर्दोष और शुद्ध होता है। कलाकार के सामाजिक सरोकार से ही वह आकार लेता है। मेरे लिए मेरा माध्यम 'टारगेट' नहीं, 'टूल' है।

● आप दरवाज़ों और खिड़की को पढ़ना शुरु करें तो इनका चाहे गृहशास्त्र कह लें या अर्थशास्त्र या समाजशास्त्र, काफी गहरा है। ये दरवाज़े विचार के दरवाज़े हैं, आस्था-अनास्था के दरवाज़े हैं, चोरों के दरवाज़े हैं। पेटिंग्स में तो इन पर काम मैंने किया है पर सिरेमिक में अभी नहीं। जो प्रकृति प्रदत्त भौतिक जगत है और जो मनुष्य निर्मित चीज़ें हैं उनके फ़र्क को ख़ासकर कलाकार के नाते उसके निर्माण, टेक्निक को, अच्छाइयों, बुराइयों को हमें पहचानना और कला माध्यम में उसी पहचान को अभिव्यक्त करना चाहिए।

● मेरे मानस पर भी प्रभाव तो कई तरह के आते-जाते रहते हैं लेकिन प्रभाकर बर्वे को मैं आइडियल पेंटर मानता हूँ। रंगों का, रुपों का अपना आवेग होता है, उन्होंने उनको उससे मुक्त किया है।

● मेरा मानना है कि प्रिंट मीडिया, मूर्तिकला या सिरेमिक को दर्शाने में सक्षम नहीं है, क्योंकि यह कला त्रिआयामी है। मीडिया से आपको देश-विदेश की जानकारी भी मिल रही है यह अच्छी बात है पर यहीं पर ख़तरा भी है कि मीडिया से हमारा गहरा संबंध हमें 'पापुलर कल्चर' के खड्डु में ले जाकर पटक देगा। अब जैसे बिस्मिल्लाह खान शहनाई के पर्याय की तरह जाने जाते थे। वे अपनी साधना और काबिलियत से प्रख्यात शहनाई वादक थे। लेकिन अगर आज कोई फन्ने खाँ का संबंध रेडियो या दूरदर्शन से हो जाए और लगातार प्रदर्शित हो तो पूरा देश उन्हें श्रेष्ठ मानने लगेगा। श्रेष्ठता का यह मापदंड कि आपको कितने लोग जानते हैं, ख़तरनाक है।

● हमें अपनी 'रीजनल आईडेंटिटी' का इतना विस्तार करना होगा कि वो यूनिवर्सल हो जाए। जैसे गैलरी में चित्र के नीचे नाम का भारतीय होना यह सिद्ध नहीं करता कि वह भारतीय चित्र है। जब तक कि उसका विषय सौन्दर्य के भारतीय मानदण्ड व चित्र की अंकन पद्धति देशज न हो।

● सृजनकर्म हो या औद्योगिकीकरण, आप जितने बड़े बाज़ार में जाएंगे वो एकरुपता पैदा करेगा, वो आपकी क्षेत्रीयता को, पहचान को या तो ख़त्म करेगा या सस्ता और बिकाऊ बना देगा।

● भारतीय शिल्प, स्थापत्य के अंग की तरह यहाँ तक आया है और समकालीन शिल्प ने स्थापत्य के अंग की तरह नहीं, वरन् उसमें अलंकरण की तरह जगह बनायी है। अब वह सजावटी हुआ है। घर-घर की टेबिल पर और ड्राइंग-रूम में सज रहा है। इस सजावटीपन के लिए जो समझौते हो रहे हैं वे कला के लिए घातक है। आज स्थापत्य शिल्पकला से पृथक होने के कारण ही कांक्रीट का जंगल बढ़ता जा रहा है और मनुष्य की कला उसके सामने बौनी हो रही है।
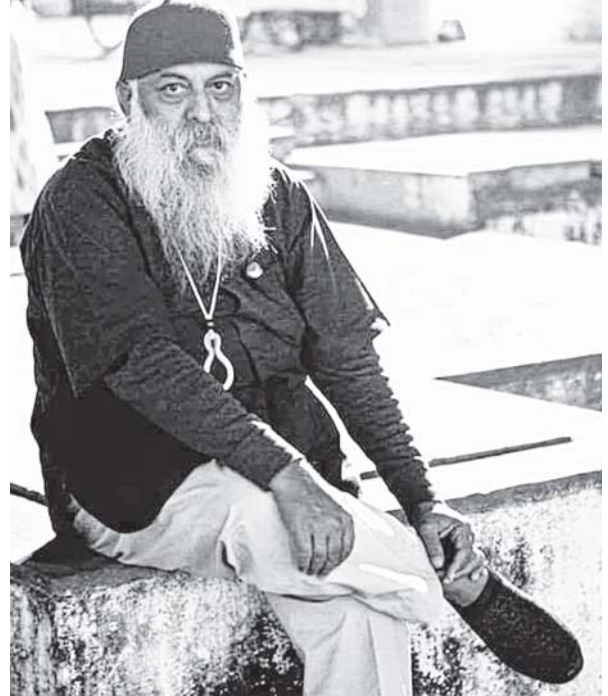
● कभी-कभी मुझे लगता है कि कला में अमूर्तता भी एक तरह की 'कमोडिटी' सुविधा है। एलीट और नवधनाढ्य वर्ग हमारे समाज की विसंगतियों व उसकी समस्याओं से आँख चुराता है, वह किसी भी चीज़ को 'फेस' करना नहीं चाहता इसलिए वो अपनी कोठियों और बंगलों में ऐसी चीज़ों सजाता है जो प्रश्न के रुप में उसे परेशान न करती हों। कलाकार के लिए भी विषय और रुप चुनने के लिए असंख्य मूर्त चीज़ें हैं। इस उलझन से बचने के लिए वह अमूर्ति चुन लेता हैं। मुझे लगता है यह एप्रोच ही निगेटिव है। कोई भी आकार किसी चीज़ को 'रिप्रजेन्ट' करता है, उसकी अपनी जाति है। अमूर्त उसके अस्तित्व के ख़िलाफ़ है।

● मैं किसी पार्टी विशेष से नहीं जुड़ा हूँ लेकिन मेरा और मेरी कला का गहरा सरोकार मनुष्य से है, उसके सुख-दुख से है।

कोरियोग्राफर वैशाली गुप्ता

सपनों को मिल गये पंख

प्रीति प्रवीण खरे

सीमित संसाधनों में जीते हुए रास्ते तलाशने की दुश्वारियों से वो वाक़िफ़ न थी। बस, विधि ने विधान तय कर दिया। दरअसल वैशाली जी की बड़ी बहन पोलियो ग्रसित थीं। उनके ठीक होने के बाद डॉक्टर ने उन्हें व्यायाम के रुप में नृत्य सीखने की सलाह दी। आस-पास व्यवस्था न होने के कारण घर से दूर अकेले जा रही बड़ी बहन के साथ छोटी बहन को भेजा गया। बड़ी के नृत्य अभ्यास के समय तक छोटी को स्वयं की अभिरुचि का पता ही नहीं था। बहन का अभ्यास देखते-देखते कब, कैसे छोटी बहन थिरकने लगी इसका भान किसी को नहीं था। एक दिन अचानक नृत्य गुरु ने छोटी बच्ची को नृत्य करते देखा। उनकी आँखों में प्रसन्नता के भाव थे। कहते हैं गुरु हाँडी के एक चावल को देखकर शिष्य की प्रतिभा भाँप लेते हैं। उनकी पारखी नज़र वैशाली जी पर पड़ी। उन्होंने नन्ही बालिका को तुरंत कक्षा में दाख़िला दिलाने का प्रस्ताव रखा। दीदी के गुरु जगन्नाथ मिश्र जी से प्रशंसा रूपी आशीर्वाद मिला। कला की डगर पर पाँव चल निकले। ... ज़क्र हो रहा है प्रसिद्ध कोरियोग्राफर और रंगकर्मी वैशाली गुप्ता का। 'शिखर सम्मान' का फैसला उनके पक्ष में आया तो खुशियाँ स्वाभाविक ही उनके अंतरंग में उतर आयीं। बीत गये वो क्षण एक बारगी फिर कौंध उठे जिनमें कहीं दूर तक निकल जाने की आहट थी।

नौवीं कक्षा में पढ़ते हुए नृत्य की छठवीं पायदान पर चढ़ना किसी चमत्कार से कम न था। वैशाली ने प्रश्न पत्र के रूप में पहली बार नृत्य कम्पोज़ किया। कंपोज़िशन देख इक्स्टर्नल हतप्रभ हुए और इस विधा में बढ़ने का हौसला मिला। संघर्षपूर्ण जीवन जीते, शिक्षक माता-पिता की संतान को शिक्षा की प्राथमिकता मालूम थी। वे जानती थीं पढ़ाई में कम नंबर माता-पिता को गवारा न होंगे। ऐसे हालात में नृत्य की उमंग को पूर्ण विराम लगने का ख़तरा मंडराता। सो, प्राण-प्रण से पढ़ाई में जुट गईं। हावड़ा पश्चिम बंगाल के छोटे से शिवपुर में जन्मी वैशाली के लिए आज तक का सफ़र तय करना दुरुह था। 'ऊँचे-नीचे रास्ते और मंज़िल अपनी दूर। राह में राही रुक ना जाना होकर के मजबूर।' यक़ीनन इन्हीं भावों को आत्मसात कर, रास्ते तलाशने का हुनर सीखा। प्रख्यात नृत्य गुरु उदयशंकर के होनहार शिष्य अच्युतानंदन का सानिध्य मिला।

रबीन्द्रनाथ विश्व विद्यालय से कथककली में डिप्लोमा के दौरान गुलवर्धन कौर जी ने इंटरव्यू लिया। वो भी आपकी प्रतिभा से प्रभावित हुए बिना न रह सकीं। उन्होंने आगामी दिनों में सेलेक्शन के बारे में बताया, हिम्मत जुटाई और फॉर्म भरा। चयन हुआ तो पिता ने इंकार कर दिया। अकेली बेटी के घर से बाहर रहने की चिंता ने बाहर जाने पर रोक लगाना उचित ही समझा। कहते हैं, जब ईश्वर एक दरवाज़ा बंद करता है तो दूसरा खोल देता है। ऐसी स्थिति में माँ का संबल और सपोर्ट मिला। वैशाली कई पड़ाव पार करते हुए 6 अगस्त 1982 को ग्वालियर पहुँची। वहाँ से भोपाल एल.बी.टी में नौकरी पाना उनके जीवन का टरनिंग प्वाइंट रहा।

इस रवानगी में गुरुओं के साथ ही भरपूर साथ मिला पति प्रेम गुप्ता का। सपनों को जैसे पंख मिल गये।

काम आगे बढ़ा तो दिव्यांग, छोटी बस्ती के होनहार बच्चे और आदिवासी बच्चों को प्रशिक्षित करने की प्रतिबद्धता और चुनौती रही, लेकिन यह मिशन बदस्तूर जारी रहा। अच्युतानंद चट्टोपाध्याय तथा प्रभात गांगुली के निर्देशन में अनेक नृत्यनाटिकाओं (बैले) में नृत्याभिनय। सुप्रसिद्ध रंगकर्मी बंसी कौल के निर्देशन में अभिनय, रूपसज्जा, देहगतियाँ, वस्त्रविन्यास आदि अनेक पक्षों में उत्तरदायित्वों का सकुशल निर्वहन। अभिनय, निर्देशन एवं कोरियोग्राफ़ी में रची-बसी वैशाली का अर्ध्य कला समिति का रचनात्मक कारवाँ वर्षों से सतत चल रहा है। चिन्टु का सपना, महिषासुर मर्दिनी, निराले हैं निराला, सीता की अग्निपरीक्षा, जलावतरण, राष्ट्रवादी कविताओं का बैले में अनुप्रयोग, मुक्तिबोध की कविताओं का बैले में प्रयोग, वीर अभिमन्यु, उत्तर रामचरित मानस। और भी बहुत सारा गिनाने तथा बताने को है। पच्चीस-पचास कलाकारों से लेकर पाँच सौ और सत्ताईस हजार कलाकारों को कोरियोग्राफ कर चुकी हैं वैशाली। पैंतालीस बरस के सफ़र की लंबी कहानी है। फिलहाल तो वैशाली के जज़्बे को, उनके फ़न को सलाम।

बैले कलाकार चंद्रमाधव बारिक

मिट्टी का ऋण चुका रहा हूँ

दीपक पगारे

मध्यप्रदेश सरकार के प्रतिष्ठित 'शिखर सम्मान' के लिए सुप्रसिद्ध कोरियोग्राफर एवं नृत्यगुरु चंद्रमाधव बारीक का चयन किया गया। चार दशक से ज्यादा का समय इस विधा को समर्पित करने के बाद बारीक को यह उपलब्धि मिली है। वे अभिभूत हैं। होना स्वाभाविक भी है। 'छाऊ' के लिए प्रसिद्ध उड़ीसा के मयूरभंज जिले के छोटे से गाँव से निकले इस कलाकार ने अपना सारा कर्मशील जीवन मध्यप्रदेश में बिताया है। इसलिए उनका यह कहना है कि- ''लंबे समय से कला की एक विधा के लिए कार्य करने का प्रतिसाद मुझे मिलेगा यह विश्वास तो था लेकिन इतना बड़ा सम्मान मिलेगा इसकी आशा कभी नहीं थी। इसलिए कह सकता हूँ कि यह उम्मीद से ज्यादा मिला है।'' शिखर सम्मान की घोषणा के बाद 'रंग संवाद' से उन्होंने अपनी कला यात्रा के तजुरबे साझा किये।

भोपाल के मायाराम सुरजन भवन के गलियारे में माधव बारीक से संवाद करना निहायत नया अनुभव था। जुदा इस मायने में इस जुनूनी कलाकार के चेहरे पर अपने गृह राज्य से निकलकर दूसरे सूबे में अपने सपनों को हरियाते देखने का सुख तैर रहा था कुछ पा लेने का संतोष। इसी बीच मैंने पहला सवाल किया- ''दादा, यह सिलसिला कैसे चल निकला? जवाब में अतीत की ओर झाँकते हुए वे बताते हैं कि मेरा गाँव चित्रणा उड़ीसा के मयूरभंज ज़िले में है। यह क्षेत्र लोकनृत्य 'छाऊ' के लिए प्रसिद्ध है। इसलिए बचपन से ही यह कला मेरे भीतर थी। इसे मैं पढ़ाई के साथ-साथ गुरुवर श्रीकांत सेन, पद्मलोचन

रायबाबू के सान्निध्य में रहकर निखार रहा था। तभी ख्यातनाम बैले निदेशक प्रभात गांगुली की नज़र मुझ पर पड़ी। उन्होंने मुझे अपने गुरु के साथ ग्वालियर का न्यौता भेजा। पहले यह सोचकर आया कि देखता हूँ। लेकिन वहाँ जाकर लगा कि अगली मंज़िल का रास्ता यहीं से निकलेगा और मैं वर्ष 1979 में उड़ीसा में लगी लगाई अपनी नौकरी छोड़कर चला आया। यहाँ तीन महीने तक प्रभात दा और गुल दी के साथ प्रशिक्षण लिया। रोज सुबह 7 बजे से रात 10 बजे तक कड़ी मेहनत की। 8 अगस्त 1979 को लिटिल बैले बैले ट्रूप से मैं जुड़ गया। इस दरम्यान– भैरवी, खुदित, तिनकिशाँ, रामायण और पंचतंत्र जैसी प्रभात दा की रचनाओं में सहयोगी की भूमिका निभाई। वर्ष 1984 में प्रभात दा के साथ भोपाल आ गया। फरवरी 2010 तक करीब 10 साल तक प्रभात दा और गुल दी के साथ रहा। इस दौरान वर्ष 1988 में सोवियत रुस में इंडियन क्लोज़िंग सेरेमनी में सहायक कोरियोग्राफर के रुप में कार्य किया।

... और इन दिनों? इस सवाल पर खुश होकर कहते हैं– ''अभी मैं कला की नई पीढ़ी तैयार करने में लगा हुआ हूँ। 'कीर्ति बैले एंड परफार्मिंग आर्ट' नाम से वे रेपिट्री वर्ष 2000 से चला रहे हैं। अभी यह संस्था मायाराम सुरजन भवन में ही चल रही है। फिलहाल 22 बच्चे इनसे इस कला को सीख रहे हैं। वे बताते हैं कि पिछले 21 वर्षों में सैकड़ों बच्चे यहाँ प्रशिक्षित हुए हैं। इनमें से कुछ तो मायानगरी मुंबई में फ़िल्मों में अपना जलवा बिखेर रहे हैं। इस फेहरिस्त में राघवेन्द्र सिंह कुशवाहा 'गोदान', इंदिरा तिवारी और योगेन्द्र सिंह राजपूत जैसे नाम हैं। यह सभी एनएसडी पास आऊट हैं। बैले सीखने के बाद अभिनय में सफलता मिलने के पीछे का रहस्य माधव इस तरह से बताते हैं कि– यहाँ रहकर इन कलाकारों ने बॉडी मूवमेंट सीखा। यह बॉडी मूवमेंट या बॉडी लैग्वेंज अभिनय में बहुत कारगर साबित होती है। इसका फायदा इन कलाकारों को मिला। उनका मानना है कि नई पीढ़ी में कला के प्रति ललक है। वे सीखना चाहते हैं। कुछ तो इसे अपना पेशा ही बनाना चाहते हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो इतने बड़े पैमाने पर संस्थाओं में बच्चे नहीं आते। आज के भौतिकवादी युग में बच्चों का कला के प्रति यह समर्पण शुभ संकेत है।

उनका मानना है कि वैसे भी मध्यप्रदेश में कला और कला के प्रति बहुत सम्मान है। मुझे क़रीब 42 वर्ष इस प्रदेश में रहते हुए हो गए। मैंने अविभाजित मप्र में भी काम किया हैं। यहाँ कला और विशेषकर नृत्य और वो भी लोक नृत्य की अलग ही छटा है। बुंदेलखंड में जहाँ आल्हा, नौरता, बधाई जैसे नृत्य हैं तो निमाड़–मालवा में गणगौर, मटकी जैसे लोकनृत्य हैं। आदिवासी नृत्यों की बात ही कुछ और है। यही हाल रंगमंच और संगीत का भी है ऐसे में यहाँ के बच्चों में तो कला के संस्कार आना स्वाभाविक ही है।

अब तक किए अपने काम के बारे में चंद्रमाधव बारीक बताते हैं कि प्रभात दा के साथ सहायक के रुप में तो कई रचनाएं दी हैं लेकिन एक पृथक कलाकार के रुप में अवंतिबाई, आल्हा, नैनागढ़ की लड़ाई, कर्णवती संवाद, सिंहासन बत्तीसी, खूब लड़ी मर्दानी, जातक कथा स्वर्ण मृग महाभारत जैसी रचनाओं की कोरियोग्राफी की। पाँच बार लोकरंग तथा तीन बार मप्र के स्थापना दिवस समारोह में मैत्रेयी पहाड़ी के साथ कोरियोग्राफी की। सुप्रसिद्ध नाट्य निदेशक बंसी कौल की संस्था 'रंगविदूषक' से भी जुड़ा रहा। उनके साथ वर्ष 2010 में कॉमनवैल्थ गैम के अवसर पर हुए

माधव का मानना है कि नई पीढ़ी में कला के प्रति ललक है। वे सीखना चाहते हैं। कुछ तो इसे अपना पेशा ही बनाना चाहते हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो इतने बड़े पैमाने पर संस्थाओं में बच्चे नहीं आते। आज के भौतिकवादी युग में बच्चों का कला के प्रति यह समर्पण शुभ संकेत है।

सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिए भी प्रस्तुतियाँ तैयार कीं। इसके अलावा देश के कई शहरों में कार्यशालाओं के ज़रिए अपने कला अनुभवों को समृद्ध किया।

इस उपलब्धि का श्रेय किसे देते हैं? पूछने पर उनका कहना था कि– निःसंदेह पहला श्रेय तो प्रभात दादा और गुलवर्धन दीदी को ही जाएगा। उन्होंने ही इस रास्ते पर अंगुली पकड़कर चलना सिखलाया। इसके साथ ही जीवनसंगिनी श्रुतिकीर्ति बारीक जो स्वयं भी अच्छी कोरियोग्राफर हैं, उनका भी साथ मिला। बेटा सिद्धार्थ और सुप्रसिद्ध रंग निदेशक बंसी कौल की भूमिका भी इस उपलबधि में बड़ी कही जाएगी। इसके अलावा वे अपने साथी और वर्कशॉप के बच्चों की शुभेच्छाओं का प्रतीक इस 'शिखर सम्मान' को मानते हैं।

वे कहते हैं इस सम्मान के बाद जिम्मेदारी बढ़ी है और मेरा प्रयास होगा कि इस प्रदेश को और भी जितना दे सकूँ, वो दूँ। छाऊ जैसे एक जनपदीय पारंपरिक कला रुप ने मेरे जीवन की दिशा ही बदल दी। मिट्टी का ऋण अदा कर रहा हूँ।

रंगकर्मी के.जी. त्रिवेदी

नौनिहालों पर निहाल
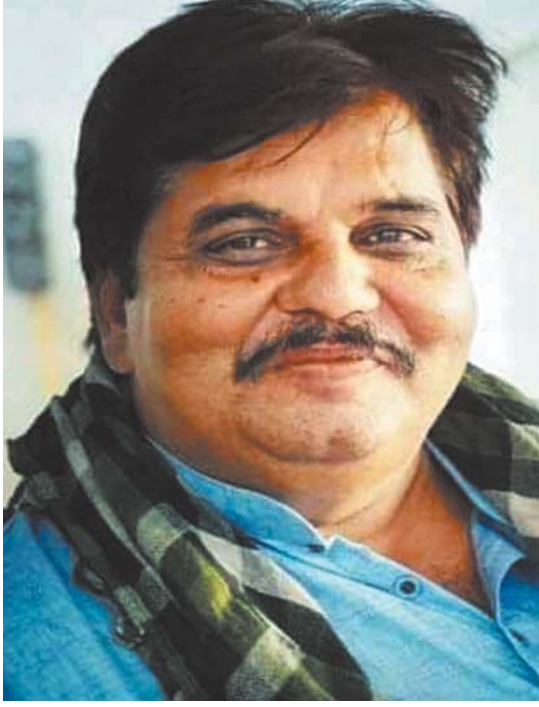
रंगमंच के सपनीले संसार में अपनी चहकती-सी दस्तक देने वाले सैकड़ों नौनिहाल उन्हें 'चच्चा' कहकर पुकारते हैं। एक रिश्ता परस्परता का कुछ यूँ परवान चढ़ता है कि बीस-तीस सालों में क़ाबिल रंगकर्मियों की पौध परवान चढ़ती है। 'चच्चा' को अपनी फर्ज़ अदायगी पर फ़क्र होता है। मध्यप्रदेश की सरज़मीं के इस रंग गुरु का यह योगदान एक दिन सूबे की सरकार की नज़र में शिखर सम्मान के योग्य साबित होता है।

हिमांशु सोनी

...नौनिहाल और नौजवान प्रतिभाओं के चहेते चच्चा हैं- के.जी. त्रिवेदी। निश्चय ही भोपाल की नई पीढ़ी को बचपन से रंगमंच की रुचि और संस्कार देने का श्रेय एक हद तक भोपाल में केजी को भी जाता है। नटखट और चुलबुलेपन के साथ बच्चों को रंग-प्रशिक्षित करने की नायाब कला केजी की पहचान रही है। समय के साथ चलती कहानियाँ और सामाजिक संदेश देते नाटकों का मंचन उनकी ख़ासियत है।

के.जी. के खाते में अनेक नाटक हैं जो उनके बेहतरीन निर्देशन और अनेक मंचनों की तस्दीक करते हैं। दर्शकों को याद होंगे- गिरगिटए विट्ठल, मालविका अग्निमित्र, नर-नारी, गगन दमामा बाज्यो, सखाराम बाईन्डर, स्कन्धगुप्त, एक था गधा, गधे की बारात, चिड़िया का बंगला, कबीरा खड़ा बाज़ार में, सैया भये कोतवाल, बॉबी की कहानी, न जानू के क़िस्से, नारद फँसे चक्कलस में, अक्ल से करो सबकी भलाई, अली बाबा और भूख आग है जैसे कई नाटक। इन तमाम संदर्भों को याद रखते हुए केजी से गुज़िश्ता वक्त और आज की चुनौतियों पर बात करने का संयोग हुआ।

सिलसिला जो नाटक के साथ शुरु हुआ और आपको यात्रा में 'शिखर' तक ले आया, आसान तो न रहा होगा। फिर भी उस शुरुआती लम्हे को ज़रा याद करें...

देखिए, ''हम उस पीढ़ी के कलाकार हैं जहाँ बच्चे को आठवीं कक्षा पास करते ही हिंदी और अंग्रेज़ी टाइपिंग सीखने के लिए भेज दिया जाता था। जैसे ही ग्यारहवीं हुई, वैसे ही किसी सरकारी नौकरी में लगा दिया जाता था। वैसे तो नाटक करना आज भी अच्छा नहीं माना जाता, लेकिन अब हालात थोड़े बदल गए हैं। युवाओं को अपना प्रोफेशन चुनने की आज़ादी हो गई है। मेरे बड़े भाई एक्टर थे और नाटक करते थे तो उनके नाटक देखने की हमें छूट थी। अगर अपनी बात करूँ तो मैं नाटक नहीं, बल्कि ये देखता था कि नाटक के पीछे यानी नेपथ्य में क्या चल रहा है? लाइटिंग कहाँ से आ रही है, हर सीन में सेट कैसे बदल रहा है या

साउंड कौन चला रहा है? तो उस दौरान मेरी डायरेक्शन की ट्रेनिंग हो रही थी, कि नाटक के पीछे के क्रियाकलाप कैसे होते हैं! इस तरह मेरा रंग सिलसिला शुरु हो गया।''

अपने निर्देशन में नाटक करने का विश्वास कब जागा? इस सवाल पर के.जी. दिलचस्प वाकया सुनाते हैं– ''साल 1980 का था। मैं 17 साल का था। तब अपना पहला नाटक 'गिरगिट' मैंने डायरेक्ट कर लिया था। जाहिर सी बात है पहली बार नाटक डायरेक्ट कर रहा तो दिक्कतें आई, लेकिन सब ठीक ही हुआ। कुछ एक्टर्स ने काम करने से मना किया, लेकिन जब दूसरे एक्टर ने उसे किया तो बहुत अच्छा हुआ। उसी समय आकाशवाणी का प्ले डायरेक्शन का टेस्ट भी मैंने पास कर लिया था। इसके बाद मेरे एक भाई मुझे अपने साथ वापी ले गए। वहाँ एक फैक्ट्री में मैं मैनेजर हो गया। लेकिन वहाँ दिल न लगा तो भाग आया। लोगों ने मुझे अपनी-अपनी तरह से ढालने की कोशिश की लेकिन मेरा झुकाव तो रंगमंच की तरफ ही था।''

... और बच्चों के रंग गुरु 'चच्चा' बनने की कहानी क्या है? तो, इस इत्तेफ़ाक की भी एक कहानी है, त्रिवेदी के पास। वे करीब पच्चीस साल पीछे पलटकर देखते हैं– ''1987 में बाल भवन की शुरुआत हुई तब कला पथक के जो कलाकार थे वो उसका संचालन करते थे। मेरे एक मित्र और संगीतकार-गायक ज़मीर हुसैन खाँ, जो कला पथक से जुड़े थे, वहाँ संगीत सिखा रहे थे। ज़मीर से अफसरों ने कहा कि बच्चे भारत के नक़्शे में खड़े होकर गाना गाएंगे। ज़मीर को यह दृश्य रचने में दिक्कत आ रही थी। वे मुझे लेकर गए। मैं इतने बच्चे देख हतप्रभ हो गया। मैंने ज़मीर से पूछा यहाँ नाटक कौन करता है। उन्होंने कहा कोई नहीं। मैंने कहा मैं यहाँ आना चाहता हूँ और बच्चों के साथ काम करना चाहता हूँ। मेरी बाल भवन में नियुक्ति हो गयी। लेकिन वहाँ भी मुझे लगता कि सरकारी नौकरी है, इसलिए बाल भवन के पीछे बने मॉरिस लाजरस के घर जाकर बैठ जाता था और दो घंटे बाद आकर अपने घर चला जाता था।

उस दरमियान कुमार शानी एक फिल्म बना रहे थे जो कथक पर आधारित थी। मांडू में उसकी शूटिंग होनी थी और बाल भवन का एक बच्चा, जो मुझसे सीख रहा था, फ़िल्म में काम कर रहा था। कुमार शानी उस फ़िल्म की मीटिंग भारत भवन में ले रहे थे। मेरा किसी काम से वहाँ जाना हुआ। उस बच्चे ने जैसे ही मुझे देखा तो वह कुमार शानी को छोड़ मेरे पास आ गया। मेरे वहाँ से जाने के बाद ही वह वापस गया। बच्चे की इस ईमानदारी ने मुझे सोचने पर मजबूर कर दिया। तब से मैंने बच्चों को गंभीरता से लेना शुरु किया और अपना सब कुछ अर्पित कर दिया। उस निर्णय का ही परिणाम है कि नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा, बॉलीवुड, भोजपुरी सिनेमा और फ़िल्म इंस्टीट्यूट तक मेरे सिखाए बच्चे पहुँचे।''

लेकिन कच्ची उम्र के बच्चों को रंगमंच जैसे गंभीर विषय के लिए तैयार कर पाना आसान तो नहीं! के.जी. यहाँ अहंकार को त्यागने की बात करते हुए अपनी तजुरबा पेश करते हैं– ''सबसे पहले तो ये भूल जाना चाहिए कि हम किसी को कुछ सिखा सकते हैं, क्योंकि व्यक्ति स्वयं ही सब सीखता है। इंस्टीट्यूट का काम होता है सिर्फ माहौल बनाना। इस माहौल में एक से दूसरा और दूसरे से तीसरा तक ये लाइट ट्रांसफॉर्म होती गई। मैं तो बैठकर बस देखता रहा और कहता रहा- करो... तुम कर सकते हो। टीचर्स ये भूल जाते हैं कि जब उन्होंने घर से क़दम बाहर निकाला था तो उन्हें क्या आता था? वे भी तो 10 साल के अनुभव के बाद ही टीचर बन पाए। बच्चा आपके पास आ रहा है उसे मोटीवेट कीजिए, न कि दबाव डालिए, वो ख़ुद ब ख़ुद सब सीख जाएगा। यही मैंने किया।

आज की बात करें तो व्यावसायिकता ने पॉव पसार लिए हैं। प्रायः सभी कलाकारों ने रंगमंच को सीढ़ी बना लिया है। क्या राय है आपकी?

सबसे पहले तो दिमाग़ से एक बात निकाल दें कि कला कोई व्यापार नहीं, वह साधना है। ये ज़रुरी नहीं की साधना या तपस्या का फल आपको मिलेगा ही। अभी जो युवा आ रहे हैं, चाहे वह एक्टिंग में हो या डायरेक्शन में, उनका मुख्य उद्देश्य पैसा कमाना है। कोई भी कला धैर्य मांगती है। 10-20 साल तो सिर्फ नाम कमाने में लगते हैं। तब कलाकार उस स्थिति में पहुँचता है कि वह अपनी जेब का पैसा न लगाए, कहीं से निकल आता है। ऐसा काम करो, जो एक नहीं, सौ जगह हो। आजकल के रंगकर्मी एक नाटक के सौ शो नहीं, बल्कि सौ नाटक बनाने पर विश्वास करने लगे हैं, ये हिंदी रंगमंच के साथ बड़ी विडम्बना भी है। जबकि महाराष्ट्र और बंगाल के रंगकर्मी एक नाटक के सौ नहीं पाँच सौ शो करने पर विश्वास करते हैं। हमारे यहाँ के रंगकर्मियों को ग्रांट के लिए अपनी फाइलें मोटी करनी होती हैं, इसलिए एक साल में चार से पाँच नाटक तक तैयार कर डालते हैं। बड़े बदलाव की ज़रुरत है।

लोक चित्रकार पूर्णिमा चतुर्वेदी

निराले रंग निमाड़ के

ममत्व की मिट्टी हो, आस्था का जल हो और हो स्नेह की धूप तो परंपरा का बिरवा हरिया उठता है। उसकी रंगो महक सुदूर दिशाओं में फैल जाती है। पूर्णिमा का सौभाग्य अपनी लोक परंपरा का प्रतीक बन गया है। मध्यप्रदेश के निमाड़ अंचल की इस बेटी ने अपनी जनपदीय कलाओं के राग-रंग की जिन आहटों को लड़कपन में घर की चार दीवारों में सुना-गुना और सहेजा उन्हें उम्र की चढ़ती सीढ़ियों के साथ पहचान का नया शिखर दिया। और अब पूर्णिमा की यह लगन उन्हें शिखर सम्मान के काबिल बना रही है।

खंडवा के निकट कावेरी नदी के किनारे बसा कालमुखी गाँव लोक संस्कृति और साहित्य के अनुरागी उपाध्याय ख़ानदान की उपलब्धियों से आलोकित रहा है। पूर्णिमा इसी परिवार की छोटी बेटी रही है। ब्याह के बाद पूर्णिमा चतुर्वेदी हुईं और भोपाल में गृहस्थ जीवन शुरु हुआ। पुश्तैनी गाँव-शहर ज़रुर छूटा लेकिन लड़कपन में घर-आँगन की चौखट पर उकेरे गये चित्र और लोक गीतों में लहराती मटियारे संगीत की धड़कनें रुह में कुछ इस तरह चली आयीं कि पूर्णिमा का वजूद उसी में पूरम्पूर ख़ुशियाँ तलाशता रहा। भोपाल से लेकर देश की राजधानी दिल्ली तक निमाड़ की मधुमय संस्कृति का लालित्य बिखरने लगा।

पूर्णिमा कहती हैं- बचपन से ही मैंने अपनी माँ, बहन और भाभियों के हाथों इन पारंपरिक चित्रों को बनते-सिरजते देखा है। जाने कब ये मांडने मेरे जीवन का अंग बन गए! यह कला आधुनिकता की चमक-धमक में अपना अस्तित्व न खो बैठे। लिहाज़ा मैंने मूल रुप में इन्हें जीवित रखा है। नई पीढ़ी के बच्चों को इस कला से परिचित कराया। देश के कोने-कोने में मैं निमाड़ी बोली और संस्कृति मेरे साथ ले गई। मैंने पारंपरिक गीतों को उनके मूल स्वरूप में प्रस्तुत किया। बच्चों ने इस कला की बारीकियों को समझा। अहिन्दी भाषी क्षेत्र के बच्चों ने भाव-भंगिमाओं से निमाड़ी चित्रांकन कला को सीखा। देश के पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में निमाड़ी लोक-चित्र, लोक-मांडने, लोक गायन, लोक नृत्य, लोक परम्परों से परिचित कराया। आज छोटा सा निमाड़ पूरे देश में जाना-पहचाना हो गया। पूर्णिमा निमाड़ की चित्र परंपरा की व्याख्या करते हुए बताती हैं कि लोक चित्रों के विषय में हम निमाड़ के चित्रों को देखें, तो हमें स्पष्ट नजर आता है, कि इनमें खेती-किसानी की झाँकी है। यहाँ शुभ-मंगल का भाव है। साधारण कार्य में भी अगर घर-आँगन लीपा जाता है, तो चौक-मांडने तो बनाते ही हैं। कुमकुम की पाँच बिंदी लगाकर भी, मंगल मना लिया जाता है। निमाड़ के संपूर्ण चित्रों में एक स्वस्थ गृहस्थ जीवन के दर्शन होते हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण दीवाल पर बनाई जिरोती माता और नाग देवता हैं। जिरोती को बनाने की कुल सामग्री प्राकृतिक फूल पत्ती, कुमकुम, हल्दी-चंदन, सिन्दूर ही रहता है। इन चित्रों में जीवन, प्रकृति और संस्कृति के आपसी रिश्तों को जीवंत होता देखा जा सकता है। ये चित्र अपने में एक समृद्ध परंपरा को बांधे हुए है। मैंने अपने घर आँगन में अपनी माय, बाई, काकी, भाभी, बुआ को इन चित्रों को रचते देखा है। उस श्रद्धा ने मुझे भी इन चित्रों में बांध लिया है। ये चित्र मुझे चित्र नहीं अपितु जीवन की तरह दिखाई देते हैं। मैं चाहती हूँ कि निमाड़ की यह लोक चित्रकला अपने मूल स्वरुप में बचे रहें। मेरे लिए यह सब अनुष्ठान की तरह पवित्र और पूजनीय है। - **मुदित**

अब भी अशेष

मोहन सगोरिया

काव्य में निरी-बौद्धिकता और नारेबाजी से हटकर उन्होंने कला तथा प्रेम को तरजीह दी। 'इतनी बार कहा है' प्रेम कविताओं की उनकी एक अनूठी कृति है जहाँ पुरुष और प्रकृति एकमेव हो जाते हैं।

स्मरण: ओम भारती

पिछले वर्ष दिसम्बर माह के ग्यारवे दिन ओम भारती इस असार-संसार को विदा कह गए। शेष रह गयी उनकी स्मृति। अगर कविताई ढंग से कहूँ तो अशेष रह गयी। 'अब भी अशेष' उनके पाँचवे कविता संग्रह का शीर्षक है। जो शेष नहीं है- 'अशेष' - अर्थात् सब कुछ है। ओम भारती भी अशेष हैं। उनकी कविताएँ, आलोचनाएँ- समीक्षाएँ, नए-पुराने-समकालीन रचनाधर्मियों पर टिप्पणियाँ, व्यंग्य, कथा-क़िस्सा-कहानी, संस्मरण, खेल और समकालीन मुद्दों पर लेख भी अशेष है।

उनके नौ कविता-संग्रह, यथा- 'कविता की आँख, 'इस तरह गाती है जुलाई', 'कोरी उम्मीद नहीं', 'पटरियों की कविता', 'जोख़िम से कम नहीं', 'वह छठवाँ तत्व', 'अब भी अशेष', 'इतनी बार कहा है', 'ओम भारती की कविताएँ' और 'विरासत में खाई' काव्य-साहित्य की थाती हैं। इसके अतिरिक्त दो कहानी संग्रह- 'एक पल का रंज' और 'स्वागत अभिमन्यु', एक गद्य कृति- 'मुक्ति समर में शब्द' तथा संपादित कृति- 'साठ पार ज्ञानरंजन', 'जीता हूँ सूरज की तरह' और 'शर्म की सी शर्त नामंज़ूर' में वे आज भी धड़क रहे हैं।

ओम भारती एक दुर्जेय प्रतिभा तथा अक्षय शब्दों के भंडार थे। उनसे बातचीत के दौरान नए-नए शब्द और चमत्कृत कर देने वाले शब्द-युग्मों से साबका पड़ता था। उनके पास अंतहीन गाथाएँ थीं और अलहदा वाक़ये थे। बहुअर्थी शब्दों का प्रयोग करना उनका शगल था। उन्हें काव्यानुभव के लिए गली-कूचे, फुटपाथ, संस्थान, बाज़ार, कार्यक्रम-स्थल, मेले आदि स्थानों पर भटकते देखा जा सकता था। समकालीनों और युवाओं के इस्लाह-विमर्श हेतु वे सहज-सुलभ थे। उन्होंने युवा रचनाकारों पर कई स्तंभ लिखे और अलक्षितों के रचनाकर्म पर खुल कर बात की। 'आकंठ' तथा 'दुनिया इन दिनों' में युवा कवियों पर उनका कॉलम बहुत पसंद किया जाता रहा। उन्होंने आत्मानंद नाम से व्यंग्य स्तंभ 'तमाशा मेरे आगे' लिखा तथा अन्य छद्म नाम से खेल-समाचारों की रपट लिखीं। उनका एक महत्वपूर्ण पक्ष उनके संपादन का भी है। 'रचना क्रम' के अंकों का संपादन, आकंठ और पल-प्रतिपल के विशेषांकों का संपादन तथा अनेक समकालीनों पर केंद्रित कृतियों को उन्होंने स्वरुप प्रदान किया। काव्य में निरी-बौद्धिकता और नारेबाजी से हटकर उन्होंने कला तथा प्रेम को तरजीह दी। 'इतनी बार कहा है' प्रेम कविताओं की उनकी एक अनूठी कृति है जहाँ पुरुष और प्रकृति एकमेव हो जाते हैं।

वे सारी दुनिया से प्रेम करते थे। सबसे मीठा बोलते-बतियाते। कोई प्रेम से आग्रह करता तो उससे मिलने मीलों पैदल चलकर पहुँच जाते। मुझे लगता है कि इस प्रकृति-पुरूष से ईश्वर ने प्रेम से आग्रह किया कि मिलने चले आओ और वे चले गए....।

'रंग संवाद' के इस अंक में ओम भारती की कविता के वो रंग हैं जिनमें कलाओं के प्रति उनका अनुरागी रिश्ता झलकता है।

रचा उसने मेरा एक और मैं

वृहत्तर कलकत्ते की जनाक्रांत हथेली पर
एक नाम के बगीचे के कोने में
उसने मुझे पुरानी डोलती तिपाई पर बैठाया
रोज़गार उसका, समय-काट था मेरा
तो भी एक तनाव तो था ही
जिसमें हम दोनों-वह कलकतिया चितेरा
और मैं प्राय: पर्यटक, सम पर ही चले
मेरा बोलना उसकी पेंसिल को
भटका देता, यह मेरा ख़्याल था
हालाँकि उतने गल-गंजन के अतल में
हम टोहते ही रह जाते कुछ शब्द
वह भी यदि जवाबी बोलता-बतियाता
वह कैसे देख रहा है मुझे, कैसे
घुस रहा मेरी स्वप्नप्रिय युवा आँखों में
पकड़ पायेगा वह मेरे स्थिर-स्थायी चेहरे को
देगा लकीरों को
आज मेरी कौन-सी शक्ल वह
ज़ेहन में उठ रहे थे मेरे हज़ार बातों के
बहते-बहकते बेशुमार बादल
शायद मैं उछाह से भरता उसे
मेरे रंगों की थाह तो ले, मुझे काग़ज़ में
गूँथ दे जागरुप, जीवित और अविकल
दोनों के चुप से चौकन्नी पेंसिल ने उसकी
रखा मुझे नोक पर अविचल
रचा उसने मेरा एक और मैं
जिसमें मैं सफ़ेद-स्याह जितना भी बचा
बची जिसमें कलकत्ता की उमस
धड़क-धमक उस दिन की जितनी भी
जो हँसकर थमाया मुझे
चित्र मेरा मुझे चकित कर गया था भरपूर
ज्यों ग़ैर-छाँहवाले को छाँह उसकी सहसा।

तलत सा'ब,
ओम भारती का सलाम

'हलोऽऽ, तलत साब?
'जी हाँ, बोल रहा हूँ, मैं-तलत महमूद।'
'तलत साहब, ओम भारती का सलाम!'
'अरे भारती जी, नमस्कार! नमस्कार!!'
'भाई जी, सुनाइये न, वो गाना...
अरे वही, जो आपने गाया ही नहीं'
'क्या बात है ओम भाई, लीजिये, सुनिये!'
कोई साक्ष्य मौजूद नहीं है मित्रों
कोई ध्वन्यांकन, कोई प्रमाण नहीं
हमारे संवाद की जो पुष्टि करे
फ़ोन कटा हुआ है मेरे घर का कब से ही
और तलत महमूद के
किसी फ़ोन नम्बर का
मेरी डायरी में
नहीं रहा कभी वजूद
मानिये मेरा कहा फिर भी
रोज़ बतियाते हैं मुझसे तलत महमूद
गाने सुनाते हैं तलत सा'ब
होती है वही लरज़ती आवाज़
गाढ़ी छनती है हम दोनों में
और बातें,
कि खाँड की रोटी, जहाँ तोड़ो, मीठी!

मधुमास में महक उठे लय-ताल के छंद

खजुराहो नृत्य समारोह
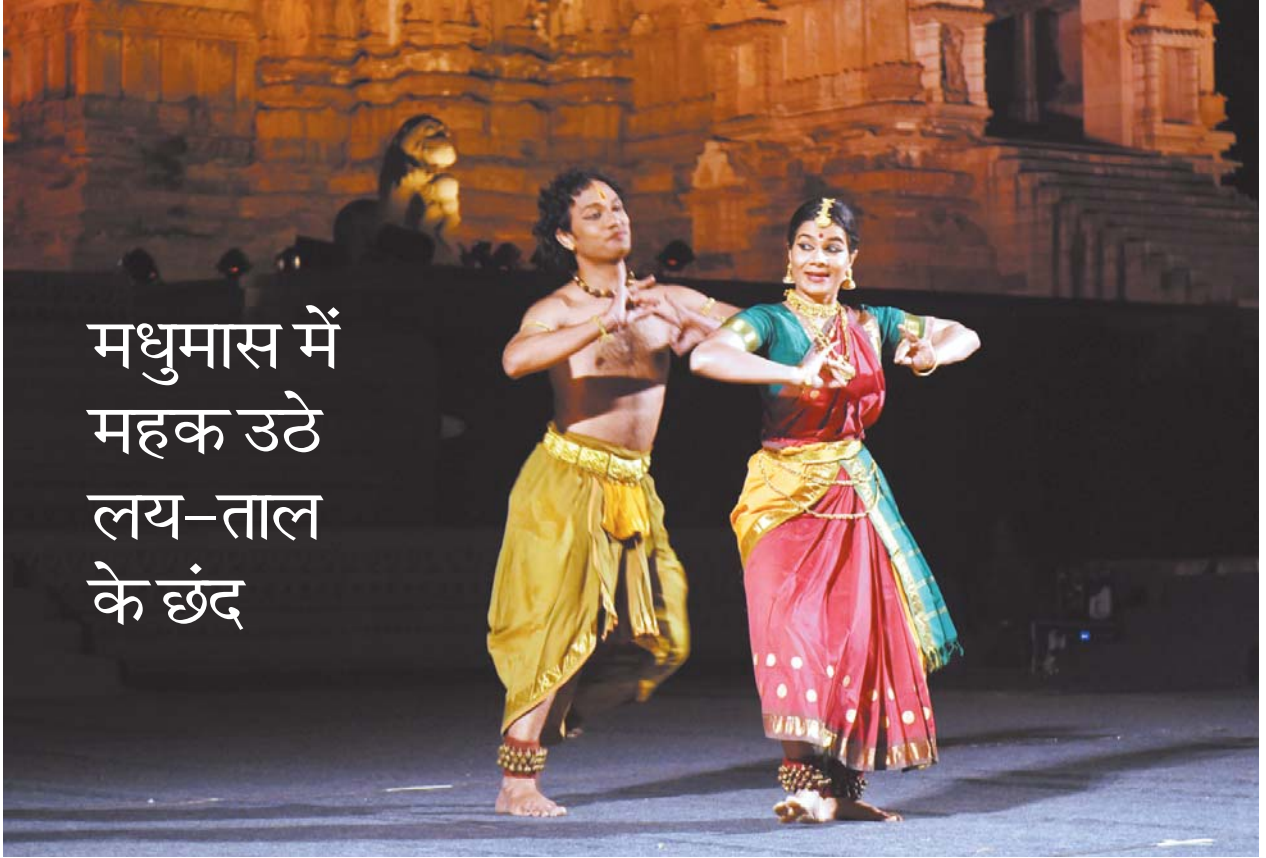
मौसम की चौखट पर मधुमास की दस्तक होती है तो धरोहर की धरती पर एक बार फिर यह पुरातन वैभव जी उठता है। एक उत्सव कला के घुँघरु बांधकर जीवन के उल्लास को नाचने लगता है। राग-रागिनियों में भावों की कलियाँ मुस्कुराने लगती हैं। परनों-तानों की लय-गतियों में पाँव थिरक उठते हैं। यूँ कंदरिया और जगदंबी मंदिरों का पवित्र परिसर संस्कृति के सुनहरे छंदों से गमक उठता है। परंपरा की उंगली थामकर साधक मन अनंत की यात्रा पर निकल पड़ता है। खजुराहो... जहाँ पत्थरों के खुरदुरे दामन पर प्रेम की मूरतें रचते हुए शिल्पियों ने कभी सोचा न होगा कि मंदिर की दीवारों से उठते शिखर एक दिन सारी क़ायनात के लिए इंसानी तहज़ीब का पैग़ाम बन जाएंगे।

मध्यप्रदेश के सांस्कृतिक पुरुषार्थ का सौभाग्य ही है कि इस दिव्य लीला को नए वक़्ती दौर में रचते हुए उसने कमोबेश आधी सदी पूरी कर ली है। परिकल्पना, संयोजन और विस्तार के ओर-छोर नापते हुए 'खजुराहो नृत्य समारोह' ने निश्चय ही अद्वितीय प्रतिमान गढ़े हैं। यहाँ ललित कलाओं का वो संसार बसता है जहाँ जीवन और कलाओं की रंगभूमि के सारे रंग बिखर जाते हैं। गहरे में उतरो तो ये रंग रुह को छू जाते हैं। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ संगीत एवं कला अकादेमी ने 48वें उत्सव का विन्यास करते हुए उन सभी विधाओं और अनुशासनों को जगह दी जहाँ रचनाशीलता, दरअसल मनुष्यता के आदर्श का हासिल चाहती है। निश्चय ही संभावनाओं के दरीचों पर एक जलसा अपनी अहमियत साबित करता नए समय को पुकार रहा है।

जीवन अगर उमंगों का छलकता समंदर है तो उसकी इठलाती हर लहर पर प्रेम की कविता पढ़ी जा सकती है। चंदेलों का गाँव इसी यक़ीन पर मोहर लगाता है। सारी दुनिया जैसे राग-रंग के इस सैलाब में सिमट जाने को आतुर है। 20 से 26 फरवरी के दरमियान भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैलियों के प्रदर्शन के साथ ही खजुराहो आए सैलानियों और स्थानीय लोक रसिकों ने इस उत्सव के साथ जुड़ी तमाम गतिविधियों में शरीक होकर जीवन के कलात्मक सरोकारों को क़रीब से देखा-जाना। .... *विनय उपाध्याय की रपट*

48वें समारोह का शुभारंभ राज्यपाल मंगूभाई पटेल की मौजूदगी में हुआ। इस मौक़े पर संस्कृति मंत्री उषा ठाकुर ने एक महत्वपूर्ण घोषणा करते हुए इस उत्सव को एक नई विरासत की सौगात में बदल दिया। उन्होंने कहा कि खजुराहो में भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैलियों का एक शोध और संदर्भ केन्द्र स्थापित किया जाएगा। पहली शाम वियतनाम, ब्रुनेई, फिनलैंड, मलेशिया और लाओ के राजदूत और उच्चायुक्त के साथ ही तीन देशों के हेड ऑफ मिशन भी उपस्थित थे। प्रमुख सचिव संस्कृति शिव शेखर शुक्ला, संचालक अदिती त्रिपाठी, आयोजक संगीत कला अकादेमी के निदेशक जयंत माधव भिसे और उत्सव के आकल्पक उपनिदेशक राहुल रस्तोगी ने नृत्य विभूतियों और मेहमान अभ्यागतों का स्वागत किया। इस मंच पर भरतनाट्यम नर्तक युगल शांता-धनंजय और कथक नृत्यांगना सुनयना हजारीलाल को म.प्र. शासन की ओर से राष्ट्रीय कालिदास सम्मान से अलंकृत किया गया। समारोह में राज्य रुपंकर कला पुरस्कार भी प्रदान किये गए। बदनावर की प्रिया सिसौदिया को देवकृष्ण जटाशंकर जोशी पुरस्कार, इंदौर के स्वप्न तरफदार को मुकुंद सखाराम भांड पुरस्कार, जबलपुर के दुर्गेश बिरथरे को रजा पुरस्कार, अशोक नगर के नरेंद्र जाटव को देवलालीकर पुरस्कार, संजय धवले को जगदीश स्वामीनाथन पुरस्कार, मुनि शर्मा को विष्णु चिंचालकर पुरस्कार, अग्नेश केरकेट्टा को नारायण श्रीधर बेंद्रे पुरस्कार, ऋतुराज श्रीवास्तव को फड़के पुरस्कार ज्योति सिंह को राममनोहर सिन्हा पुरस्कार एवं सोनाली चौहान को लक्ष्मीशंकर राजपूत पुरस्कार से सम्मानित किया गया। राज्यपाल ने इन कलाकारों को 51 हज़ार रुपए की राशि और प्रमाणपत्र प्रदान किये।

मूर्धन्य नृत्य गुरु पंडित बिरजू महाराज ने कभी खजुराहो की धरती पर आकर कहा था- ''यहाँ मंदिर और मन की साधना के मंदिर का मिलन होता है''। इसी अहोभाव के साथ इस बार भी नर्तकों ने लय-ताल और भाव-अभिनय का अभिषेक किया। नृत्य सभाएँ तो 'कथक के दिवंगत महाराज' की स्मृति को समर्पित रही हीं, 'नेपथ्य' का मंच भी इस नृत्य विभूति की महान विरासत को समर्पित रहा। 'कलावार्ता' का पहला सत्र भी लखनऊ घराने के अग्रणी नर्तक के अवदान पर एकाग्र रहा। बहरहाल पहले दिन की सभा देश की जानी मानी ओडिसी नृत्यांगना भुवनेश्वर की सुजाता महापात्रा का हृदयग्राही ओडिसी नृत्य हुआ। विश्व विख्यात ओडिसी नर्तक पंडित केलुचरण महापात्रा की बहू और शिष्या सुजाता ने गणेश वंदना से मंगलाचरण करने के बाद आदि शंकराचार्य कृत 'अर्धनारीश्वर' की मनोहारी नृत्य प्रस्तुति दी। रागमाला के विभिन्न रागों और विविध तालों से सजी इस प्रस्तुति में सुजाता का समर्पण उन्हें ओडीसी की प्रथम पंक्ति में लाता है। युवा नर्तक राजेन्द्र और निरुपा भी इस सभा में पूरे उत्साह से प्रकट हुए। उनकी ख़ास पेशकश रही- कालिदास कृत 'रघुवंश'। रागमालिका आदिताल और तीन ताल

● ● ●

जीवन अगर उमंगों का छलकता समंदर है तो उसकी इठलाती हर लहर पर प्रेम की कविता पढ़ी जा सकती है। चंदेलों का गाँव इसी यक़ीन पर मोहर लगाता है। सारी दुनिया जैसे राग-रंग के इस सैलाब में सिमट जाने को आतुर है।

के पदविन्यास से सजी इस रचना में कथक और भरतनाट्यम का उदात्त रूप देखने को मिला। निश्चय ही यह सुन्दर प्रयोग था। समापन पद्मश्री जयरामाराव एवं उनके साथियों के कुचिपुड़ी नृत्य से हुआ। उनकी प्रस्तुति हिरण्यकश्यप संहार ने विशेष ध्यान आकर्षित किया। मिस्र चापू और आदिताल में निबद्ध तेलगु रचना पर आधारित इस रचना में जयराम राव ने सुथरी भावाभिव्यक्ति से रसिकों को विभोर कर दिया।

तीसरे दिन मोहिनी अट्टम,भरतनाट्यम से लेकर कथक तक शास्त्रीय नृत्यों की प्रस्तुतियों में रस और भाव का हार्दिक स्वरुप देखने मिला। मोहिनी अट्टम का अर्थ भगवान विष्णु के मोहिनी रुप से है जो उन्होंने समुद्र मंथन के दौरान भस्मासुर को मारने के लिए धरा था। अट्टम यानी नृत्य। नीना की पहली प्रस्तुति चोलकट की थी। ये गणेश वंदना के स्वर थे। इसके बाद की प्रस्तुति पदवर्णम की थी। मिस्र चापू ताल और राग काम्बोजी में सजे गीत-संगीत पर गंगा की कथा कहते हुए रस और भावों की अभिव्यंजना को उन्होंने अपने पद और अंग संचालन के साथ बख़ूबी पेश किया। उन्होंने आकाश गंगा भू गंगा और पाताल गंगा तीनों को साकार किया। नृत्य का समापन गीत गोविन्दम की अष्टपदी से हुआ। इसी सभा में बैंगलौर के पार्श्वनाथ उपाध्याय और उनके साथियों सुश्री श्रुति गोपाल एवं आदित्य पीवी ने भरतनाट्यम की प्रस्तुति दी। यह प्रस्तुति पुष्पक विमान से अयोध्या लौट रहे राम-सीता की पार्श्वनाथ और उनके साथियों ने बड़े ही कौशल के साथ ये प्रस्तुति दी। मृदंग पर हर्ष समागम, बाँसुरी पर जयराम किक्केरी, सितार पर सुमारानी ने साथ दिया। प्रकाश संचालन नागराज का था। कार्यक्रम का समापन मुम्बई से आईं टीना तांबे के कथक नृत्य से हुआ। टीना के नृत्य में लखनऊ की नज़ाकत, जयपुर की तैयारी और पैरों का काम तथा रायगढ़ की उत्कृष्टता का संगम देखा जा सकता है। तबले पर सत्यप्रकाश मिश्रा, सितार पर अलका गुर्जर, पढन्त पर निशा नायर गायन व हारमोनियम पर वैभव मांकड़ ने साथ दिया।

चौथी सभा की शुरुआत विदुषी नृत्यांगना सोनिया परचुरे के कथक नृत्य से हुई। नृत्य की शुरुआत अर्धनारीश्वर नटेश्वर स्त्रोत से की। आदि शंकराचार्य कृत इस रचना में भगवान शिव और माता पार्वती के अलौकिक स्वरूप का वर्णन है। सोनिया जी ने एक कथा के माध्यम से इसे पेश किया। समापन उन्होंने भाव नृत्य से किया। विदुषी प्रभा अत्रे की राग किरवानी के सुरों में सजी बंदिश नंद नंदन मनमोहन श्यामसुंदर पर आपने कृष्ण को साकार करने की कोशिश की।

दूसरी प्रस्तुति कथकली और भरतनाट्यम की थी। कोट्टायम केरल से तशरीफ लाए कलामंडलम सुनील एवं पेरिस लक्ष्मी की जोड़ी ने कथकली एवं भरतनाट्यम को जीवंत कर दिया। कृष्णलीला और दुर्योधन वध प्रसंगों का सुंदर चित्रण किया।

इस सभा का समापन दिल्ली की रागिनी नागर के कथक नृत्य से हुई। शमा भाटे की शिष्या रागिनी ने प्रस्तुति की शुरुआत शिव स्तुति से की। इसके बाद उन्होंने तीनताल में शुद्ध नृत्य की प्रस्तुति दी।

पांचवे दिन का आगाज़ कादिरी आंध्रप्रदेश से तशरीफ लाये बसंत किरण और उनके साथियों के कुचिपुड़ी नृत्य से हुई। आदि शंकराचार्य द्वारा रचित अर्धनारीश्वर नटेश्वर पर एक रुपक रचते हुए बसंत किरण पेश आए। यह कथा प्रकृति और पुरुष के समन्वय का चित्रण है।

पुणे की सर्वरी जमेनीस का कथक नृत्य भी ख़ास लुभावना था। उन्होनें तीन ताल पर उठान, आमद, परन, तत्कार, टुकड़े आदि में अपनी तालीम और तैयारी दिखाई। समापन होली के भावनृत्य से किया। सभा को संध्या पुरेचा और उनके समूह ने उत्कर्ष पर पहुँचाया। संध्या भरत नाट्यम की विदुषी नृत्यांगनाओं में शुमार होती हैं। आगाज सनातन धर्म की तीनों धाराओं शैव, वैष्णव एवं शाक्त पर केंद्रित बैले से हुआ। राग और ताल मालिका से सजी इस प्रस्तुति में अर्धनारीश्वर, उमा महेश्वर स्त्रोत पर शानदार प्रस्तुति दी गई।

छटवें दिन की सभा का आगाज़ एक ऐसी नृत्यांगना ने किया जिसे समाज अलग नज़रिये से देखता आ रहा है। देविका देवेंद्र एस मंगलामुखी ट्रांसजेंडर नृत्यांगना हैं। उन्होंने समाज का बहुत विरोध झेलकर आज जो मुकाम पाया है उस पर अब यही समाज फ़क्र भी करता है। जयपुर घराने से ताल्लुक रखने वाली देविका ने चलन से थोड़ा परे जाकर मुगलिया शैली में कथक की प्रस्तुति दी। इसके बाद उन्होंने सरगम के अंग में सलाम की प्रस्तुति दी। सलाम मुगल दरबारों में किये जाने वाले कथक का एक ख़ास अंग रहा है।

दूसरी प्रस्तुति में भुवनेश्वर से तशरीफ लाये रुद्राक्ष फाउंडेशन के कलाकारों ने ओडिसी नृत्य के वैभव के दर्शन कराए। अगली प्रस्तुति महाभारत से थी। चक्रव्यूह नाम की इस प्रस्तुति में अभिमन्यु के शौर्य पराक्रम कौरवों की कुटिल चालों को नृतभावों में पेश किया। कार्यक्रम का समापन नयनिका घोष के कथक नृत्य से हुआ। उन्होंने आरंभ शिव की वंदना से

किया। राग जोग के सुरों और आड़ा चौताल की बंदिश पर आपने नृत भावों से शिव के मूर्त–अमूर्त या आकार निराकार स्वरुप को पेश किया।

नृत्य समारोह की आखिरी शाम मंच पर वासंती खुमार शबाब पर था। कथक और भरतनाट्यम की जुगलबंदी के साथ भोपाल की भरतनाट्यम नृत्यांगना श्वेता देवेंद्र और कथक नृत्यांगना क्षमा मालवीय अपने समूह की 14 नृत्यांगनाओं के साथ पेश आयीं। श्वेता ने भरतनाट्यम के अलारिपु की प्रस्तुति दी और क्षमा ने ध्रुपद की बंदिश– 'जय जगदंबा कालिका' पर शुद्ध कथक नृत्य पेश किया। फिर सूरदास के पद ''सुंदर श्याम सुंदर लीला सुंदर बोलत बचन'' में कथक और भरतनाट्यम का सुंदर रुप उभरकर सामने आया। भरतनाटयम में आदिताल जो कथक में तीन ताल हो जाती है पर बेहतरीन पद और अंग संचालन देखने को मिला। रचना राग हंसध्वनि में थी। दूसरी प्रस्तुति भी कथक की रही। गुरु शमा भाटे के नृत्य संस्थान– नादरुप के कलाकारों ने बसंत और फागुन को अपने कथक से खजुराहो के मंच पर साकार किया। उमंग नाम की इस प्रस्तुति में बसंत भी था तो होली के रंग भी बिखरे। कृष्ण की बंशी का सम्मोहन भी वादियों में तैरता रहा।

सभा का समापन इम्फाल से आये मणिपुरी नृत्य समूह तपस्या के कलाकारों द्वारा मणिपुरी नृत्य से हुआ। शुरुआत नट संकीर्तन से हुई। यह पूजा का एक रूप है जो महायज्ञ के रुप में माना जाता है और श्रीमद भागवत के सौंदर्य तत्व को प्रदर्शित करता है। यूनेस्को ने मणिपुरी नृत्य संकीर्तन को अपनी प्रतिनिधि सूची में जगह दी है।

संवाद में कलाओं का ललित पक्ष

नृत्य सहित दीगर ललित कलाओं का संदर्भ लेते हुए संस्कृति के विभिन्न पक्षों पर संवाद की एक महत्वपूर्ण गतिविधि 'कलावार्ता' के रुप में विगत कुछ वर्षों से समारोह को बौद्धिक आभा प्रदान कर रही है। सुबह का यह सत्र नृत्य, अध्यात्म, चित्रकला, पुरातत्व, फ़िल्म, संगीत, योग आदि विषयों पर वार्ता का खुला मंच होता है। इस दफ़ा भी बेहद सार्थक और सुरुचि से भरे उद्बोधन रहे।

महाराज की याद : पहला संवाद 21 फरवरी को नृत्य सम्राट पंडित बिरजू महाराज के कला जीवन की स्मृतियों पर केन्द्रित था। उनकी प्रिय शिष्या शाश्वती सेन और बेटी ममता महाराज ने कहा कि जिन्होंने कई लोगों की आँखे खोली और सही रास्ता दिखाया, ऐसे गुरु मिल पाना मुश्किल है। मेरे पिता–गुरु हर विषय में पारंगत थे। नृत्य तो वे करते ही थे सितार सारंगी वायलिन से लेकर तबला पखावज तक सब ऐसे बजाते थे जैसे वे इन्हीं के लिए बने थे। गायन में भी शास्त्रीय से लेकर गजल ठुमरी दादरा सब कुछ किसी मंझे कलाकार की तरह गाते थे। वे कविताएं लिखते तो लगता कि वे कवि हैं, पेंटिंग करते तो लगता कि वे चित्रकार हैं। वास्तव में वे अवतारी पुरुष थे। ममता ने इच्छा ज़ाहिर की कि अगला जन्म भी उन्हें महाराज जी के घर में उनके पिता रहते मिले। शाश्वती सेन ने कहा कि ख़ासकर बच्चों में कथक को लोकप्रिय बनाने के लिए महाराज ने काफी काम किया। इसके लिए उन्होंने ऐसी गतें, तिहाइयाँ बनाई कि नीरस लगने वाला कथक लोगों को आसानी से समझ आने लगा। चित्रकार लक्ष्मीनारायण भावसार ने भी बिरजू महाराज से जुड़े कुछ संस्मरण साझा किए।

'कलावार्ता' के दूसरे सत्र में प्रख्यात पुरातत्वविद शिवकांत वाजपेयी ने खजुराहो के मंदिरों के संदर्भ में पुरातत्व और नृत्य संगीत के अंतरसंबंधों पर विस्तार से और प्रामाणिक ढंग से चर्चा की। उन्होंने कहा कि खजुराहो के मंदिर और उन पर उत्कीर्ण मूर्तियाँ ताल मान प्रमाण से बनाई गई हैं इनका संस्कृति, आध्यत्म से गहरा रिश्ता है।

महाराज पर विशेष डाक आवरण : डाक विभाग ने खजुराहो नृत्य महोत्सव के कलावार्ता सत्र में पंडित बिरजू महाराज पर विशेष आवरण जारी किया। प्रयाग फैलेटिलिक सोसायटी के प्रस्ताव पर

सोसाइटी के सचिव राहुल गांगुली ने खजुराहो पोस्ट ऑफिस की ओर से ये आवरण जारी किया। शाम 4 बजे बिरजू महाराज पर केंद्रित फ़िल्मों का प्रदर्शन किया गया।

सौन्दर्य की संस्कृति है चित्रकला: मुम्बई की प्रख्यात चित्रकार एवं सर जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट मुम्बई की डीन मनीषा पाटिल ने एक अन्य सत्र में कला के विद्यार्थियों और कला रसिकों से संवाद किया। उन्होंने कहा कि बॉम्बे स्कूल केवल सर जे.जे. स्कूल तक सीमित नहीं है। 1837 में जब स्कूल की स्थापना हुई तब अंग्रेज़ी हुकूमत थी। कला के उनके अपने मानक थे, सो जाहिर है यहाँ पढ़ने वाले उस असर से मुक्त नहीं हो सके। पाटिल ने विभिन्न स्लाइड्स के प्रेजेन्टेशन के जरिये विजुअल आर्ट की विकास यात्रा तत्कालीन शिक्षण पद्धति आदि को रोचक ढंग से प्रस्तुत करते हुए कहा कि हमारी संस्कृति में जो सौंदर्य है वो कहीं और देखने को नहीं मिलता। मनीषा पाटिल ने विद्यार्थियों के सवालों के जवाब भी दिए और कहा कि हमें अपनी संस्कृति और उसके मूलाधारों की समझने और ज्ञान को बढ़ाने की जरूरत है। मौजूदा पीढ़ी में वे इसकी कमी पाती हैं।

सनातन कला है नृत्य : संस्कृतिविद् राजेश कुमार व्यास ने नृत्य में सभी कलाओं का मेल है। कलाकार प्रयोग से इसमें बढ़त करता है। उन्होंने बिरजू महाराज और अन्य नर्तकों संस्मरण साझा करते हुए कहा कि अपने नृत्य में बिरजू महाराज ने राधा को आत्मसात कर लिया था। कथक को उन्होंने जीवन से जोड़ा। केलुचरण महापात्रा ने गोटिपुआ, महरी के प्रयोग से ओडिसी को बहुआयामी बनाया। इसी तरह नृत्य सम्राट उदयशंकर ने गवरी, बेले आदि नृत्यों के मेल से विरल नृत्य मुहावरा रचा।

व्यास ने कलाओं के अन्त:सम्बन्धों की चर्चा करते हुए नृत्य में प्रयोगधर्मिता और संवाद के जरिये उसके विकास पर ध्यान दिए जाने का आह्वान किया। उन्होंने कहा कि कलाएँ व्यक्ति को संस्कारित करती हैं। नृत्य कला देखने का संस्कार देती है।

सुंदर हो, सार्थक भी हो: प्रसिद्ध कवि-चित्रकार अरविंद ओझा ने अपने संवाद सत्र में कहा कि कलाएँ मनुष्य को मनुष्य बनाती हैं। मनुष्य शब्द मनन से बना है जो मन का विस्तार है। चिंता जाहिर करते हुए उन्होंने कहा कि आज का कला का स्वरुप सार्थक नहीं है। वह प्रयोग के तौर पर सुंदर जरुर है पर चिंतन और विचार के धरातल पर सार्थकता कम है। उन्होंने योरोप के मानववाद का जिक्र करते हुए कहा कि मनुष्यता वही है जहाँ मनुष्य की अभिव्यक्ति को स्थान दिया जाए।

भोपाल की तृषा कौशिक ने सम्मोहन और नृत्यकला के संदर्भ में अपनी बात कही। तमाम भ्रांतियों को खारिज करते हुए कहा कि वास्तव में हम अपने जीवन में रोज़मर्रा के कई बार सम्मोहित होते हैं और सम्मोहित करते भी हैं। उन्होंने कहा सम्मोहन बाहर से नहीं आता ये तो हमारे भीतर ही है। उन्होंने मन की चेतन और अवचेतन अवस्था का जिक्र करते हुए कहा कि कला से भी ये जुड़ा हुआ है।

विश्व सिनेमा पर संवाद: फ़िल्म और कला समीक्षक अजीत राय ने 'कलावार्ता' के एक सत्र में विश्व सिनमा का परिप्रेक्ष्य खोला। उन्होंने कहा कि

आज विश्व का सिनेमा बदल रहा है। जहाँ जीवन और मनुष्यता खतरे में हैं वहाँ के खतरों से दो चार होते हुए फ़िल्मकार कैमरा घुमा रहे हैं और नए विषयों पर फ़िल्में बना रहे हैं। जहाँ जिंदगी संकट में है वहाँ सिनेमा आज़ादी के लिए खड़ा है।

उन्होंने कहा कि हाल के कुछ वर्षों में महिला फ़िल्मकारों का वर्चस्व भी सामने आया है। औरत कैमरा उठा रही है और सिनेमाई संस्कृति बदल रही है। उन्होंने 2006 की ईरानी फ़िल्म ऑफ साइड का ज़िक्र किया और कहा कि बन्दिशों से नारी को बाहर निकालने और उसे जाग्रत करने वाली इस फ़िल्म के बाद 2016 में ईरान को महिलाओं के लिए फुटबॉल देखने की अनुमति देनी पड़ी।

मूर्तियों में मुखर संगीतः युवा शोधार्थी अनामिका दुबे ने मूर्तिकला और संगीत पर अपनी बात कही। खजुराहो के स्थापत्य में वाद्य यंत्रों की तलाश करते हुए तत्कालीन सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना पर उन्होंने शोध भी किया है। उन्होंने खजुराहो के मंदिरों पर उत्कीर्ण मूर्तियों के संदर्भ लेते हुए स्लाइड्स के जरिये बताया कि आज हम संगीत में जिन वाद्यों का इस्तेमाल करते है वे न केवल सदियों पुराने है बल्कि उनकी लंबी परंपरा है।

आर्ट मार्ट– चितेरों का नया रंगायनः एक संपूर्ण उत्सव की कल्पना में सजीव हो उठा यह समारोह 'आर्ट मार्ट' के लिए भी अलग से याद किया जाएगा। एक बड़े से पांडाल में मानों चित्रों की दुनिया रंग–रेखाओं में आबाद हो उठती है! इस बार जलरंगों से जीवंत था यह परिसर। भारत के मुख़्तलिफ़ सूबों के शहर–क़स्बों से लेकर सिंगापुर, दुबई, बुल्गारिया, बांग्लादेश और अमेरिका जैसे दीगर मुल्कों से भी नुमाईश के लिए कलाकृतियाँ साझा हुईं। वॉटर कलर के नाम पर चित्रकला का आधुनिक संसार कला और हुनर में अलहदा दर्ज़ों में भी शाया हुआ। यह अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी इस बात को भी जांचने का अवसर थी कि हमारे वक़्ती दौर के ख़ासकर युवा चितेरे अपनी कला परंपरा और प्रशिक्षण की स्कूलों से मिले सबक, प्रेरणाओं और अपने स्वतंत्र–चेता चिंतन–कौशल के बीच किस तरह का सृजन कर रहे हैं? इन सबके बीच आवाजाही करते हुए चित्रकारों का परस्पर संवाद मानीखेज़ रहा। पर्यटकों और कस्बाई दर्शकों के कला आस्वाद और कौतुहल को परखना भी दिलचस्प तजुर्बा था। यूँ एक नयी सांस्कृतिक नातेदारी का मंच बना 'आर्ट मार्ट'। प्रतिभागी चित्रकारों से मुख़ातिब कला अकादेमी के उपनिदेशक राहुल रस्तोगी ने कहा कि 'आर्ट मार्ट' चित्रकारों के लिए सामूहिकता में अपने

सृजन को संजोने और संवाद करने के साथ ही भावी दिशाओं की तलाश के लिए उर्जा अर्जित करने का सुनहरा अवसर है। प्रदर्शनी की समन्वयक वरिष्ठ चित्रकार प्रीता गड़करी 'आर्ट मार्ट' के विस्तार और गुणकारी कला सृजन को समारोह का हासिल मानती हैं। उनका कहना है कि इस तरह कला की एक नई बिरादरी ने आकार लिया। प्रीता कहती हैं कि वाटर कलर पुरानी चित्रकला पद्धति है। यह मुश्किल काम है। बहुत संयम और नियंत्रण की यहाँ दरकार है। पार जलरंगों में हर विषय वस्तु और विचार संभव है। ये रंग गहरे से हल्के की ओर जाते हुए दृश्य और भावों का वैविध्य रच देते हैं।

'आर्ट मार्ट' के साथ ही 'प्रणति' शीर्षक एक अन्य प्रकल्प में वरिष्ठ चित्रकार और कला गुरु लक्ष्मीनारायण भावसार अपनी कलाकृतियों के संग पेश आए। आधी सदी से भी अधिक समय के विविध अंतरालों में रची गये उनके चित्रों का संग्रह देखना दर्शकों और नौजवान चित्रकारों के लिए प्रीतिकर अनुभव था। भावसार मध्यप्रदेश के शिखर सम्मान से विभूषित चित्रकार है। मालवा की इंदौर स्कूल से प्रशिक्षित होकर उन्होंने अपने कलाकर्म को लगातार समृद्ध किया। खजुराहो अगर दुनिया के महान आश्चर्यों में एक है तो यहाँ होने वाला नृत्य समारोह भी अनेक अर्थों में विस्मय जगाता है। यह विस्मय बने रहना चाहिए।

उम्मीदों के नए रंग–बादल

शैडो बॉक्स थियेटर फेस्टिवल

विक्रांत भट्ट

कोराना काल के दौरान हुई भारी उथल–पुथल से रंगकर्म की दुनिया भी अछूती नहीं रही थी। एक तरह की उदासी और शिथिलता ने पैर पसार लिए थे। ऐसे में शैडो बॉक्स थियेटर फेस्टिवल ने उम्मीद की रंगभूमि पर एक नई उर्जा का संचार किया। संस्था के बीस वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर आयोजित आठ दिवसीय थियेटर फेस्टिवल निश्चय ही समकालीन नाट्य जगत में शौकिया रंगकर्मियों के लिए संभावना का एक नया मंच तैयार करता रहा।

शैडो के संस्थापक मनोज नायर ने अपने गुरु हबीब तनवीर के स्वप्न को साकार करते हुए शहर के बीच अपना बॉक्स थियेटर बनाकर रंगकर्म प्रेमियों की एक नई उर्वरा भूमि तैयार की है। आमतौर पर बड़े प्रेक्षागृहों में नाट्य प्रस्तुतियों के चलन की परंपरा के समानांतर शहर के किसी ऐसे हिस्से में जो रंगकर्म की गतिविधियों से बिल्कुल अछूता हो वहाँ बॉक्स थियेटर का निर्माण कर ऐसी गतिविधि कर रंगकर्म को समृद्ध करने और नए दर्शक बनाने की दिशा में बड़ा महत्वपूर्ण कदम है। साथ ही रंग पिपासु दर्शक जवाहर ताहिलरमानी को साधुवाद कि उन्होंने बॉक्स थियेटर के लिए जगह मुहैया करवायी। उत्सव की सभी प्रस्तुतियों में उमड़े दर्शकों ने जिस कौतुहल, जिज्ञासा और प्रश्नाकुलता के साथ दस्तक दी वह हिंदी रंगमंच की सार्थकता का जीवंत प्रमाण है। दर्शकों का यह समूह प्रेक्षागृहों में आमतौर पर आने वाले नाट्य प्रेमियों से अलग नाटकों की चाहत रखने वाली बिरादरी का प्रतीक था। निश्चय ही यह शैडो ग्रुप की कमाई है।

थियेटर फेस्टिवल में नाट्य प्रस्तुतियों के दौरान रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति एवं साहित्यकार संतोष चौबे, वरिष्ठ कथाकार मुकेश वर्मा और कला समीक्षक विनय उपाध्याय की मौजूदगी ने कलाकारों को प्रोत्साहित करते हुए नई सृजनात्मक दिशाओं के लिए प्रेरित किया। प्रतिदिन नाट्य प्रस्तुति से पहले पूर्व रंग में संगीतमय गीतों की प्रस्तुति तो नाटक के प्रदर्शन के बाद दर्शकों से कलाकारों का सीधा संवाद भी होता रहा। जिसमें दर्शकों के जिज्ञासु सवालों पर कलाकारों के सधे जवाबों ने नए रंगबीजों को सिंचित करने का काम किया।

दास्तानगोई से आग़ाज़: आग़ाज़ मेहमूद फारुकी के निर्देशन में 'दास्तानगोई' से हुआ। अभिनेता राणा प्रताप सेंगर और आशीष रावत ने प्रभावी तरीके से विजयदान देथा की कहानी चौबोली को दास्तानगोई शैली में प्रस्तुत किया। कहानी का नाट्य रूपांतर और निर्देशन दिल्ली के मेहमूद फारुकी ने किया था। इस दास्तानगोई में रानी चौबोली चुनौती देती है कि कोई भी व्यक्ति उसकी चुप्पी तुड़वा दे तो वह उससे विवाह कर लेगी। दिलचस्प मोड़ लेता कथानक चौबोली की खुशी से चरम पर पहुँचता है। आशीष रावत ने बताया कि दास्तानगोई सोलहवीं सत्रहवीं शताब्दी में सुनाई जाती थी। यही रवायत आज रंगमंच नए रुप में देखी–सराही जा रही है।

नेपथ्य में शकुंतला: दूसरे दिन उत्सव के मेज़बान मनोज नायर द्वारा लिखित और निर्देशित नाटक नेपथ्य में शकुंतला का मंचन हुआ। नाटक का मजमून था कि कोई भी व्यक्ति छोटा या बड़ा नहीं होता। हर व्यक्ति का अपनी जगह महत्व होता है। यह मूलत: एक अभिनेता और बैक स्टेज में प्रापर्टी बनाने वाले कलाकार मानव की कहानी है। प्रकाश

परिकल्पना हर्ष वर्धन सिंह राजपूत की थी। वस्त्र विन्यास स्मिता नायर और रश्मि आचार्य, प्रापर्टी डिजाइन हर्ष वर्धन कावडे की रही। मंच पर विभिन्न क़िरदारों में अलय खान, स्मिता नायर, अभि श्रीवास्तव, नैनी टी जवांश, अनुश्री जैन, मिलिंद दाभाड़े, आदर्श ठस्सू, अनंत राजौरिया, हर्षिता सिंह राजपूत, सोनू चतुर्वेदी रहे।

झलकी औरत की आपबीती: तीसरे दिन नादिरा जहीर बब्बर द्वारा लिखित लाटक सकुबाई का मंचन हुआ। प्रसिद्ध फ़िल्म कला निर्देशक जयंत देशमुख के निर्देशन में भोपाल की आशी मालवीय ने अपने अभिनय से सकुबाई के किरदार को जीवंत कर दिया। सकुबाई एक साधारण महिला है जो मुंबई जैसे शहर में अपनी आजीविका चलाने के लिए कामवाली बाई बनकर गुजारा करती है। दरअसल ये एक नारी चेतना की कहानी है। घर में की सफाई करते हुए वह लोगों के दिलों की भी सफाई करती है। सकुबाई की ही तरह लाखों महिलाएं है जो उसी की तरह संघर्षमय जीवन जी रही है।

कामायिनी: चौथी शाम जयशंकर प्रसाद की कालजयी रचना कामायनी का मंचन किया गया। 'कामायनी' के इस मंचन की मूल संकल्पना प्रसिद्ध बैले कलाकार माधव-श्रुति बारिक ने की, जबकि इसका निर्देशन वरिष्ठ रंगकर्मी मनोज नायर ने किया। कामायनी के कथानक और इसके किरदारों को जीवंत बैले ग्रुप और शैडो ग्रुप के कलाकारों ने संयुक्त रूप से किया। कामायनी में मूलत: मनुष्यता की चिंता दिखायी गई। इसमें मनु की भूमिका में सिद्धार्थ बारीक, श्रद्धा प्रियंका शर्मा और इड़ा की भूमिका में सुमन कोठारी रही। नाटक का मुख्य आकर्षण इसका लाइव संगीत रहा। जिसे मनोज नायर, अलय खान, अभि श्रीवास्तव, मिलिंद और नैनी जवांश की टीम ने संचालित किया। हर्ष वर्धन सिंह राजपूत की प्रकाश परिकल्पना प्रस्तुति को नए रंग-अध्यात्म में ढालती है।

गिट्टू गिरगिट को अपने ग्रह की चिंता: शैडो बाक्स में पाँचवे दिन गरम होती धरती की चिंता करने आया नाटक गिट्टू गिरगिट। बालाघाट की संस्था स्वांगवाले से नाटक के लेखक और निर्देशक धनेन्द्र कावड़े की यह सोलो प्रस्तुति थी। गिट्टू एक साधारण गिरगिट है जो जीवन में फिर से रंग लाना चाहता है। यही उसका मिशन है, लोगों को सोचने पर विवश करता है कि हम अपने ग्रह के लिए क्या कर रहे हैं?

दास्ताने कठपुतली: छठे दिन एक दलित महिला के संघर्ष की कहानी दिखाई गई जो अकाल के समय स्वयं और अपनी संतान को जीवित रहने के लिए विकट परिस्थितियों से गुजरती है। विभूति भूषण बंदोपाध्याय की लघु बांग्ला कहानी शीतल पाटी अभिनेत्री संजीता ने दस्ताने कठपुतली के माध्यम से बहुत ही मार्मिक तरीके से एकल नाट्य के रूप में प्रस्तुत किया। इस लघु कहानी का नाट्य रूपांतर किया था आशीश गोस्वामी ने। मूल नाटक बांग्ला में था परंतु दर्शकों की मांग पर उन्होंने उसे पहली बार ही हिन्दी में प्रस्तुत किया। यह रंग प्रयोग भी अद्भुत रहा।

ब्लादिमीर का हीरो: सातवें दिन शैडो बाक्स की प्रस्तुति ब्लादिमीर का हीरो रही। नाटक कहता है कि कोई भी मनुष्य सुकून, इज्जत और आज़ादी के साथ अपनी ज़िंदगी जीना चाहता है। अपराध के लिए दंड का प्रावधान है वो सही है लेकिन कोई व्यक्ति बिना गलती के सजा भोगे इससे ज्यादा तकलीफदेह कुछ नहीं हो सकता। नाट्य लेखन और निर्देशन मनोज नायर का रहा। नाटक में प्रकाश व्यवस्था धनुलाल सिन्हा की रही। संगीत अमर सिंह, मिलिंद दाभाडे, देवा शांडिल्य ने दिया। कॉस्ट्युम स्मिता नायर और रष्मि आचार्य। जबकि नाटक में अभिनय कर रहे थे- शोभित खरे, अनिमेष श्रीवास्तव, नैनी जवांश, अभि श्रीवास्तव, अलय खान, आदर्श ठस्सू, अनंत राजोरिया, मिलिंद दाभाडे।

आउट ऑफ फ्रेम: थियेटर फेस्टिवल का समापन टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के नाटक 'आउट ऑफ फ्रेम' से हुआ। मनोज नायर के निर्देशन में ही टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के विद्यार्थियों ने इसे जीवंत किया। नाटक में बताया गया कि ये दुनिया एक बने बनाये ढ़र्रे पर चलती है और जो कोई इस ढर्रे को तोड़कर, सांचे से बाहर आने की कोशिश करता है वह कई स्तरों पर विरोधों को झेलता है। नाटक आउट ऑफ फ्रेम कला की अभिव्यक्ति के पक्ष में ज़ोरदार तरीके से आवाज़ उठाता है।

इस समापन संध्या का पूर्वरंग इस मायने में अनूठा रहा कि विहान ड्रामा वर्क्स के कलाकारों ने चारबैत गायन का प्रस्तुति के लिए चुना। दरअसल चारबैत अपनी परंपरा में पुरुषोचित गान शैली रही है। मध्यप्रदेश उर्दू अकादेमी ने एक कार्यशाला के दौरान विहान को इस नए संस्कार में डाला है, जिसमें महिलाओं की आवाज़ें भी शामिल हो सकी। श्वेता केतकर, निवेदिता सोनी, सृष्टि भागवत, तेजस्विता अनंत, व्याख्या चौहान, ईशा गोस्वामी इस बात की तस्दीक करती है।

हिन्दुस्तानी तहज़ीब में अवाम की आवाज़ों को पुरअसर करने वाला सबसे कारगर फ़न थिएटर रहा है। दिलचस्प यह कि अलग-अलग सूबों, शहरों और गाँव-क़स्बों की आबो-हवा में परवरिश पाकर परवान चढ़ी ड्रामे की कला को मुख़्तलिफ़ ज़ुबानों ने भी पनाह दी। उर्दू इस लिहाज़ से अपना अलहदा रंग बिखेरती रही। इधर भोपाल में म.प्र. उर्दू अकादेमी की ओर से एक सालाना जलसा उर्दू नाट्य समारोह के नाम से होता रहा है। इस दफ़ा भी महामारी की बयार ने बंदिशें क़ायम कीं लेकिन अनुशासन की सख़्ती के बीच जश्ने-ए-रंग खिलते रहे। उर्दू अकादमी की निदेशक नुसरत मेहदी वाज़िब फ़रमाती हैं कि उर्दू में नाटक को यह अहमियत हासिल है कि उसका पौधा किसी अन्य मुल्क से नहीं लाया गया बल्कि उसने भारत में ही जन्म लिया। यहीं फूला-फला। इसलिए यहाँ का जीवन, घटनाएँ और इतिहास नाटक में नज़र आते हैं। बिलाशक समारोह के तमाम नाटकों में हिन्दुस्तानी तहज़ीब, रवायत और बिरादरी की मुख़्तलिफ़ शक्लें दिखाई दीं। यहाँ यह जोड़ा जाना ज़रुरी लगता है कि नाटकों के प्रति रंगकर्मियों का उत्साह तो बराबर बना हुआ है लेकिन गुणवत्ता को लेकर गंभीरता की कमी बहुत साफ़ दिखाई देती है। यह कमी शायद गुज़रे दो बरसों में आए ठहराव की वजह से भी हो लेकिन काबिल-ए-ग़ौर है।

ड्रामा फेस्टिवल की एक अहम पेशकश रहा- ''इमाम-ए-राम, नाज़-ए-हिन्द राम''। हिन्दी और उर्दू ज़ुबानों की जुगलबंदी में राम के बेशुमार रंग-रूपों, छवियों, अर्थ और आशयों को समता, ममता और एकता के आसपास देखने-महसूसने के ये नायाब लम्हे थे। मशहूर शायर शम्सी मीनाई ने आवाज़ लगाई- ''एक तर्ज़ एक बात है, हर ख़ास-ओ-आम से/मिलते हैं कैसे-कैसे सबक हमको राम से''। फिर इसी सिलसिले में जुड़ा रहबर जौनपुरी का मकबूल शेर- ''क़दमों से राम के ये ज़मीं सरफ़राज है/हिन्दोस्तां को उन की शुजामत पे नाज़ है''। कबीर की निर्गुण पुकार भी रुह में जीवन के सच का उजाला बिखेरती रही- ''ज़रा धीरे-धीरे गाड़ी हाँको, मेरे राम गाड़ी वाले''। इन तमाम संदर्भों का ताना-बाना जोड़कर इंदौर के संस्कृतिकर्मी आलोक वाजपेयी ने राम का एक नया रूपक रचा। अयोध्या के राम की व्यापक स्वीकृति का आग्रह लेकर वे रंगमंच की चौखट पर नमूदार हुए हैं। यहाँ राम की गाथा केवल घटनाओं और कुछ प्रसंगों का कोरा बखान नहीं है बल्कि गुणों की खान हैं।

ग़ौर करने वाली बात ये कि संस्कृत और अवधी की हदों से बाहर उर्दू सहित मुख़्तलिफ़ ज़ुबानों के अदब ने राम का एहतेराम किया है। आलेख और विषय वस्तु से परे जब रंगमंच की कसौटी पर इस नाटक को देखें तो निर्देशक से अपेक्षाएँ बाकी भी रह जाती हैं। संवाद और अभिनय का कच्चापन खलता है। गोया कि जल्दबाज़ी में नाटक को शक्ल दे दी गयी। वो एनर्जी जो खेले जा रहे नाटक के भीतर से दर्शकों के लिए फोर्स पैदा करती है, शिद्दत से उभर न पायी। सुशील जौहरी, तनवीर फारूखी, प्रांजल श्रोत्रिय और बद्र वास्ती जैसे परिचित चेहरों

लबो-लहज़े और अदाकारी के मुख़्तलिफ़ रंग

को मुद्दत बाद अभिनय करते देखना भला-सा लगा। अभ्युदय सांस्कृतिक मंच-इंदौर की टीम के लिए निश्चय ही यह नया रंग अनुभव रहा। प्रगल्भ-सतीश श्रोत्रिय, दिग्दीप सिंह मंच परे नाटक के नक्श को निखारते रहे। 'ख़ानम बी' यंग्स थिएटर फ़ाउंडेशन, भोपाल ने प्रस्तुत किया। लेखक एस.एन. लाल एवं निर्देशक सरफराज़ हसन थे। नाटक में आज़ादी से पहले और उसके बाद के हालात को बयान किया गया है। यह एक ऐसे कोठे की कहानी है जहाँ लड़कियों को अदब, शायरी, गायन एवं नृत्य सिखाने की पाठशाला के रुप में बहुत सम्मान के साथ पहचाना जाता है इस कोठे को वतनपरस्त ख़ानम बी नाम की एक बहुत सम्मानित और बाउसूल ख़ातून चलाती हैं जो अपने देश भारत से बहुत मोहब्बत करने वाली हैं। वे बटवारें के ख़िलाफ़ रहती हैं और अपनी बुद्धिमत्ता से पाकिस्तान के बनने पर इसके नुक़सानात की भविष्यवाणी करती हैं जो कुछ सालों में सच साबित होती है। नाटक का शिल्प, उसकी पेशगी और कुछ क़िरदारों का नया अभिनय भी बेमिसाल था। लेकिन समग्रता में देखें तो संगीत और कुछ तीव्र ध्वनियों का अतिरेक प्रस्तुति की रवानगी में खलल डालता है।

नाटक 'जल कुकड़े-3' का मंचन आलेख, अभिनय और निर्देशन की कसौटी पर एक निखरी हुई प्रस्तुति साबित हुआ। रंग समूह 'अदाकार' भोपाल द्वारा इसे खेला गया जिसके लेखक रफ़ी शब्बीर एवं निर्देशक फर्रुख़ शेर ख़ान हैं। नाटक कहता है कि जलन एक बुरी मनोवृति तो है लेकिन जल कुकड़े-3 में ये किस तरह अपना रुप बदलती है, यह दिलचस्प है। यहाँ मध्यम वर्गीय परिवार के रिहायशी मसअले के साथ अकेलेपन के शिकार उन पुरुषों का दुख पेश किया गया है जिनके बच्चे उन्हें छोड़ कर विदेश चले जाते हैं और समझते हैं कि उनके पास पैसे भेजने से ही वह ख़ुश हो जाएंगे, मगर यहाँ वो दूसरों के परिवार को देख जलते कुढ़ते अपना जीवन व्यतीत करते हैं। नाटक के मुख्य कलाकारों में मोहम्मद आसिफ़, सुमित मिश्रा, योगी चंद्रवंशी, ज़ुबैर आलम, मिथुन धूरिया, श्रुति धर्मेश, इमरान ख़ान, अंकुर राव, संजय पंचाक्षरी आदि शामिल रहे।

'नज़ीर तू बेनज़ीर'... लेखक रिज़वान उल हक़ लिखित इस नाटक के निर्देशक राजीव सिंह तथा सहायक निर्देशक सौरभ परिहार और प्रिया भदौरिया हैं। नज़ीर अकबराबादी की नज़्मों में जहाँ अवामी ज़िंदगी जीती जागती, हँसती बोलती और चलती फिरती नज़र है इसी तरह दरबारों, शहरों, बाज़ारों, ख़ानख़ाहों और मंदिरों की रौनक और चहल पहल भरपूर अंदाज़ में दिखाई देती है।

नज़ीर को भारत के कण-कण से बे पनाह मोहब्बत है। इसलिए उन्होंने भारत के विभिन्न त्योहारों, मेलों ठेलों और धर्म गुरुओं की शान में बहुत नज़्में लिखी हैं। उन्होंने जहाँ ईद, शबे बारात, और हज़रत सलीम चिश्ती पर नज़्में लिखीं वहीं होली, दिवाली, राखी, कन्हैया जी, राम, कृष्ण जी, नाटक नज़ीर अकबराबादी की नज़्मों पर आधारित है और ख़ास बात यह है कि नज़ीर का क़िरदार मंच पर अभिनय करता नज़र होता है।

ड्रामा फेस्टिवल का समापन कॉमेडी से भरपूर नाटक 'भाग अवंति भाग' से हुआ। मनोरंजन से भरपूर यह प्रस्तुति भोपाल थिएटर्स की रही। नाटक के मूल मराठी लेखक योगेश सोमण तथा निर्देशक राजीव वर्मा हैं। हिन्दी-उर्दू में इसका रुपांतरण प्रवीण महूवाले ने किया। प्रवीण ख़ुद इस नाटक के मुख्य क़िरदार हैं।

इस दौर में आम आदमी को अपनी रोज़ मर्रा की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बड़ी मशक्कत करनी पड़ती है। ऐसे में यदि किसी गंभीर बीमारी पर जमा पूँजी खर्च हो जाती है तब कभी-कभी व्यक्ति त्रस्त हो कर ऐसे निर्णय ले लेता है कि स्थितियाँ हास्यास्पद हो जाती हैं। वरिष्ठ अभिनेत्री रीता वर्मा सहित अदिशा नायर, अभिषेक ठाकुर आदि का अभिनय और आपसी ताना-बाना नाटक को दिलचस्प बना देता है। -अभिषेक

उर्दू अकादमी की निदेशक नुसरत मेहदी वाज़िब फ़रमाती हैं कि उर्दू में नाटक को यह अहमियत हासिल है कि उसका पौधा किसी अन्य मुल्क से नहीं लाया गया बल्कि उसने भारत में ही जन्म लिया। यहीं फूला-फला। इसलिए यहाँ का जीवन, घटनाएँ और इतिहास नाटक में नज़र आते हैं। बिलाशक समारोह के तमाम नाटकों में हिन्दुस्तानी तहज़ीब, रवायत और बिरादरी की मुख़्तलिफ़ शक्लें दिखाई दीं।

संवाद और अभिनय की नई रंग ऊर्जा

कारवां, भोपाल द्वारा संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार की 'सांस्कृतिक समारोह एवं प्रस्तुति अनुदान योजना' के अंतर्गत संयोजित तीन दिवसीय 'भीष्म साहनी नाट्य समारोह मो.नज़ीर कुरैशी निर्देशित 'डॉक्टर, आप भी!' के मंचन के साथ संपन्न हो गया। 4 से 6 फरवरी 2022 तक जारी इस नाट्य समारोह में दर्शकों ने तीन मुख्तलिफ रंग-रुप-कलेवर वाले नाटकों का लुत्फ उठाया। आयोजन स्थल था- रंगश्री लिटिल बैले ट्रूप सभागार। कारवां ने नाट्य क्षेत्र के वरिष्ठ सृजनकर्मियों की सम्मानित करने के उद्देश्य से 'भीष्म सम्मान' देने का सिलसिला भी शुरु किया। पहला 'भीष्म सम्मान' लखनऊ की वरिष्ठ अभिनेत्री, नाट्य लेखिका और अनुवादक भानुमती सिंह को दिया गया।

• भीष्म साहनी नाट्य समारोह •

पहली शाम आगाज़ आग़ा हश्र कश्मीरी के मशहूर नाटक 'यहूदी की लड़की' के यादगार मंचन से हुआ। उबेदुल्लाह खान निर्देशित यह नाटक पारसी शैली के सुनहरे दौर को हमारे सामने पुनर्जीवित करता है। नाटक का यह नौवां मंचन था लिहाज़ा नाटक की कथा के साथ अभिनेताओं का तादात्म्य और चरित्र निभाने का उनका आत्मविश्वास प्रत्येक दृश्य- बंध में महसूस होता रहा। सुरेन्द्र वानखेड़े के कर्णमधुर संगीत और हारमोनियम वादक एवं गायक संकेत भारत के सुरपगे पार्श्व गायन ने प्रस्तुति में चार चांद लगा दिए। ब्रजेश अनय का प्रकाश आकल्पन भी बेहद संतुलित और प्रस्तुति के दृश्यों को उभारने में सहायक रहा। अभिनेताओं में प्रदीप नेमा, श्रुति सिंह, उबेदुल्लाह खान, स्मिता गर्ग, जावेद खान और युसुफ खान ने खास तौर पर प्रभावित किया। सच्चे प्रेम करने वालों के लिए जाति-धर्म-नस्ल और विषम सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति भी कोई मायने नहीं रखती। यही आवाज़ नाटक को मकबूल बनाती है। आज के रंगकर्मी को भारतीय हिंदी-उर्दू रंगमंच की परंपरा से जोड़ने के लिए यहूदी की लड़की जैसे नाटकों को खेला जाना बेहद जरुरी है। इस नाटक के चयन और सफल निर्वहन के लिए उबेदुल्लाह साधुवाद के पात्र हैं।

समारोह की दूसरी शाम अतिथि संस्था की प्रस्तुति- 'मोहोब्बत के साइड इफेक्ट्स' का मंचन आधारशिला रंगमंडल, प्रयागराज (इलाहाबाद)ने रंगकर्मी-निर्देशक अजय केशरी के निर्देशन में किया। छत्तीसगढ़ के वरिष्ठ नाट्य लेखक अख्तर अली लिखित यह नाटक हास-परिहास और व्यंग्य के माध्यम से समकालीन राजनीतिक-सामाजिक विद्रुपताओं और विसंगतियों पर चुटीले ढंग से निशाना साधता है। नाटक देखते हुए बरबस अजय शुक्ला लिखित मशहूर कामेडी नाटक 'ताजमहल का टेंडर' की याद भी आ गई। कलाकारों में सलीम (नजिम खान), अनारकली (दिव्या शुक्ला), बादशाह (अजय केशरी), रंगकर्मी और गमगीन (अमित यादव)और मुर्दे का किरदार निभाने वाले कलाकार अमित श्रीवास्तव ने बढ़िया अदाकारी की। अलबत्ता नाटक का प्रस्तुतिकरण साफ-सुथरा और अभिनय सराहनीय होते हुए भी इसका समग्र प्रभाव कम रहा। अमित यादव का गायन और सुजाय घोषाल की प्रकाश योजना ज़रुर प्रस्तुति के सबल पक्ष रहे।

समारोह का समापन अजित दलवी के प्रसिद्ध मराठी नाटक 'डॉक्टर, तुम्हीं सुद्धा! के हिंदी में भानुमती सिंह द्वारा रूपांतरित नाटक डॉक्टर, आप भी! की विचारोत्तेजक प्रस्तुति से हुआ। मो. नज़ीर कुरैशी निर्देशित इस नाटक के पहले मंचन की साक्षी बनने भानुमती सिंह स्वयं उपस्थित रहीं। यथार्थवादी शैली के इस नाटक में चिकित्सा व्यवसाय के बढ़ते बाजारीकरण पर गंभीर विमर्श है। साथ ही यह चिकित्सक पति-पत्नी के वैचारिक मतभेदों से उत्पन्न तनावपूर्ण मनोदशा की भी बारीक पड़ताल करता है। सुसंपादित नाटक अपने प्रवाह में दर्शकों को बांध लेता है। युवा अभिनेता और उभरते कला निर्देशक अंशुल कुकरेले की कल्पनाशील नेपथ्य योजना, आदर्श शर्मा का प्रसंगानुकूल ध्वनि प्रभाव और ब्रजेश अनय की अच्छी प्रकाश परिकल्पना ने प्रस्तुति की लय को साधा।

डॉ. अलका और डॉ अविनाश की मुख्य भूमिकाएं ज्योति सावरीकर और विवेक सावरीकर ने बेहद संजीदगी से निभायी। अन्य किराएदारों में डॉ. सतीश (सैफू खान), मंजू गुप्ता (मंजू रैकवार), छोटू (जावेद खान), डॉ अग्रवाल (हैदर खान) और सुरेश गुप्ता (अंशुल कुकरेले) थे। छोटी सी भूमिका में मनोज भामा भी दिखे।

मुद्दत बाद रंगमंच पर लौट रही रौनक के बीच दर्शकों की आमद का तो स्वागत लेकिन सभागार में प्रस्तुति के दौरान बज उठते मोबाईल, दर्शकों की आवाजाही, वार्तालाप मंच की कार्यवाहियों में विचलन पैदा करते रहे। 'कारवां' के कलाकार नई उर्जा से भरे पेश आये, यह शुभ है।

– **आसावरी शर्मा**

होरी हो ब्रजराज

होली आती है तो हम लौटते हैं अपने संस्कारों की टोह में। एक बार फिर जी भरकर अपनी मिट्टी को छूते है और समूची देह में उसकी सौंधी सुवास को भर लेते है। भारत का ऐसा कोई जनपद नहीं, जहाँ इस फाग पर्व के साथ प्रेम और श्रृंगार के गीतों की गुंजार न बिखरती हो, ढोल-मृदंग पर थाप न पड़ती हों और अनगढ़ पाँव नृत्यमय थिरकन से झंकृत न होते हों। इसी उत्सवधर्मी परंपरा के गीतों के बहाने लोकरंगी स्मृतियों को संजोने और उसमें आनंद के साथ शामिल होने का आमंत्रण है- 'होरी हो ब्रजराज'। मंशा यह कि आधुनिक संदर्भों में हम उस लोक विरासत की भी सुध लें जहाँ जीवन बनावटी राग-विराग से परे सच्चे अर्थों में आत्मीयता का पैगाम है।

इस पृष्ठभूमि के साथ ब्रज क्षेत्र के लगभग 250 होली गीतों का उनकी पारंपरिक धुनों के साथ आईसेक्ट स्टूडियो, भोपाल ने संग्रह किया और उनकी देशज पहचान को बरकरार रखते हुए नई सज-धज के साथ ध्वन्यांकित किया। यहाँ काव्य, संगीत और नृत्य का मिलाजुला रोमांच है। लोक का खुला मीठा स्वर है, तो लय-ताल और साज-बाज की गमक के साथ शास्त्रीय राग-रागिनियों की हमजोली भी। कहीं रसिया और धमार की अल्हड़ता और मस्ती है तो कहीं विहाग और काफी की कोमल सुर लहरियों में झरती मिलन-बिछोह के मनछूते प्रसंगों की करूणा। ब्रज भूमि का संदर्भ आते ही कृष्ण-राधा की लीला छवियाँ आँखों में तैरने लगती है। 'होरी हो ब्रजराज' के गीतों की ख़ासियत है खुला हृदय और फैली बाहें। यहाँ फाग की मस्ती और हँसी-ठिठौली है, थिरकन है तो कहीं कृष्ण भक्ति के रस में डुबोती कानों में घुलती मिठास है। यहीं कहीं मुरली माधव है, थिरकन है तो कहीं रसिक प्रिया राधा है, यही-कहीं छिपे है गोकुल के ग्वाल-बाल। केशर, अबीर और गुलाल की उड़ानों से आसमान अटा है। ढोल और मृदंग की थापों के बीच उमड़ते फागों के प्रेम-रस में तरबतर होकर आत्मा को रंगने की गुहार है- 'होरी हो ब्रजराज'। शब्द, दृश्य, रंग और ध्वनि की हमजोली में इन होलियों के सम्मोहन से गुजरना एक अलौकिक अनुभव रहा है। लता सिंह मुंशी, क्षमा मालवीय और श्वेता देवेन्द्र जैसी गुणी और प्रयोगधर्मी नृत्यांगानाओं ने परंपरा के इन गीतों में निहित लालित्य और श्रृंगार को सुंदर अभिव्यक्ति में ढाला है। ये गीत हमारी उत्सवी आकांक्षाओं की वो आदिम पुकारें है जहाँ दुख-सुख से आँख-मिचौली करता जीवन आज़ाद मन की रंग-बिरंगी उड़ानें भरता दिखाई देता है।

इन बेशकीमती दस्तावेज़ी को इस तरह संजोने की सुध साहित्य-संस्कृतिकर्मी संतोष चौबे ने क़रीब डेढ़ दशक पहले ली और संगीतकार संतोष कौशिक और उनकी टीम ने महीनों की मेहनत से उनका सांगीतिक परिष्कार कर गुमनामी से उबारा। भोपाल के इंदिरा गांधी मानव संग्रहालय और रवीन्द्र भवन सहित कुछ दीगर शहरों में होलियों का मंचन रस भीनी धुनों और छवियों के आसपास हिन्दुस्तानी तहज़ीब की सैर कराता रहा।

* सृजन के आसपास *

छाउ, उरुभंग और अधांतर

रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में छाउ नृत्य की कक्षाभ्यास प्रस्तुति हुई। शिखर सम्मान के लिए चयनित विख्यात कोरियोग्राफर माधव चंद्र बारिक के मार्गदर्शन में विद्यार्थी 20 दिनों से निरंतर अभ्यास कर रहे थे। लगभग 20 मिनिट की इस प्रस्तुति को विद्यार्थियों ने छाउ की पारंपरिक वेशभूषा में प्रस्तुत किया। गुरु माधव चंद्र ने बताया कि इन विद्यार्थियों को इस प्रशिक्षण में पलटा, आडाचाली, लहरा, उफली, चीरा, मुड़ा चाली, घेउ, पटिया उड़ा आदि का प्रशिक्षण दिया गया। नाट्य विद्यालय के निदेशक मनोज नायर के अनुसार आंगिक अभिनय में छाउ एक अभिनेता के लिए बहुत ही जरुरी है। जिसके अभ्यास से अभिनेता की अंग शुद्धि, आंगिक नियंत्रण और स्टेमिना में वृद्धि होती है। साथ ही कलाकार में एक अनुशासन आता है। इस दौरान रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. ब्रह्म प्रकाश पेठिया भी उपस्थित थे। उन्होंने माधव बारिक को स्मृति चिन्ह देकर सम्मानित भी किया।

कक्षाभ्यास की अगली कड़ी में संस्कृत आचार्य भास की लोकप्रिय कृति 'उरुभंग' पर आधारित नाट्य प्रस्तुति का मंचन हुआ। प्रेक्षागृह या रंगशाला के आग्रह से परे यह प्रस्तुति जंगल, पड़ार और खुले मैदान में दृश्य की अनुकूलता निर्मित करते हुए संपन्न हुई। विद्यार्थियों ने ही इसे कल्पित किया। युद्ध कभी शांति और खुशहाली नहीं लाते। युद्ध के बाद अगर शेष रहते हैं तो वह है प्रतिहिंसा, पश्चाताप और अवसाद। महाभारत के अठारह दिन के युद्ध के बाद की कथा पर आधारित नाटक 'उरुभंग' कुछ ऐसा ही संदेश देता दिखाई दिया। टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा कक्षाभ्यास प्रस्तुति के दौरान आनंद पांडे के निर्देशन में इस नाटक का मंचन रबीन्द्र नाथ टैगोर विश्वविद्यालय स्थित नाट्य विद्यालय परिसर में किया गया।

लगभग आधे घंटे की इस प्रस्तुति में द्वंद्व युद्ध में जब भीम दुर्योधन की जंघा पर प्रहार कर उसे तोड़ देते हैं उस समय और उसके बाद की दुर्योधन की मन: स्थिति का भावप्रवण चित्रण हैं। युद्ध के परिणाम ने उसके मन को किस तरह बदला है। साथ ही अंधे धृतराष्ट्र और गांधारी दुर्योधन के पुत्र और उसकी रानियों के साथ उससे मिलने आते हैं। उसी समय अश्वत्थामा भी पांडवों से प्रतिशोध की अग्नि में तपता दुर्योधन से मिलने आता है। भीम के इस प्रकार दुर्योधन पर अनीति पूर्वक प्रहार से बलराम भी क्रोधित होकर आते हैं। नाटक में पात्र कम होने के कारण विद्यार्थियों के दो समूह बनाकर प्रस्तुति 30 और 31 दिसंबर को हुई। संगीत संतोष कौशिक और अभि श्रीवास्तव का रहा।

कक्षाभ्यास में **प्रयोग**

टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की प्रस्तुति

कितना मुश्किल होता है एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार का एक महानगर में जीवन यापन जबकि परिवार में कमाने वाले कम और खाने वाले ज्यादा हो। ऐसे में कपड़ा मीलों में हड़ताल और उन्हें ख़त्म करने की साज़िशें। ऐसे ही हालातों से जूझती एक परिवार की कहानी है नाटक अधांतर। लेखक जयंत पंवार के मूल मराठी नाटक और कैलाष सेंगर के हिन्दी अनुवाद का निर्देशन किया अविजीत सोलंकी ने। टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा कक्षाभ्यास प्रस्तुति के दौरान इस नाटक के पाँच अलग-अलग मंचन हुए जिसमें भूमिकाओं में छात्रों ने बदल-बदल कर हिस्सा लिया। लगभग 40 मिनिट की इस प्रस्तुति में मुंबई की एक चाल में रहने वाले परिवार की कहानी है। जिसमें एक बुढ़ी महिला अपने तीन नाकारा लड़कों और बेटी दामाद के साथ रहती है। परिवार का पूरा खर्च वह अकेले टिफीन चलाकर उठाती है। उसके तीनों बेटे बिल्कुल बेकार है। बाहरी प्रभावों और कुछ घरेलु घटनाक्रमों के चलते नाटक के अंत में पूरा परिवार बिखर जाता है। - **विक्रांत भट्ट**

फिर उमड़ा मौसिक़ी का मेला

विधिना यह जिय जानिके, शेषहिं दिये न कान/धरा मेरु सब डोलहिं/तानसेन की तान... विलक्षण संगीतकार तानसेन अपनी इन्हीं विलक्षणताओं के साथ स्मृतियों में रचे-बसे हैं। उनकी याद में हर बरस ग्वालियर स्थित उनकी समाधि पर सुरों का मेला सजता है। इबादत के सुर महकते हैं। देश-विदेश के बुजुर्ग और नौजवान फ़नकार हज़ीरा इलाके में बनी तानसेन की मजार पर माथा झुकाते हैं। दिसंबर का आख़िरी हफ्ता तानसेन की तपस्या भूमि पर आस्था का ऐसा ही सैलाब उमड़ा। मध्यप्रदेश के संस्कृति विभाग की उस्ताद अलाउद्दीन खाँ संगीत एवं कला अकादेमी के संयोजन में परिकल्पित इस समारोह के पहले दिन मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान और संस्कृति मंत्री सुश्री उषा ठाकुर ने मूर्धन्य सितार वादक पं. कार्तिक कुमार और घटम् वादक पं. विक्कू विनायकम् को राष्ट्रीय कालिदास सम्मान से विभूषित किया। सम्मान के तहत शासन की ओर से दो लाख रुपए की राशि, शॉल, श्रीफल और उत्कीर्ण प्रशस्ति भेंट की गयी।

प्रमुख सचिव संस्कृति शिव शेखर शुक्ला ने सम्मानित कलाकारों का प्रशस्ति वाचन किया। अतिथियों का स्वागत संचालक संस्कृति अदिति कुमार त्रिपाठी ने किया। इस अवसर पर अतिथियों ने दिनेश पाठक द्वारा भारत रत्न प्रख्यात सितार वादक पंडित रवि शंकर पर लिखे गए मोनोग्राफ का विमोचन भी किया।

मौसिक़ी के बादशाह तानसेन की याद में शुरू हुए संगीत के आलमी जलसे तानसेन समारोह का पहला दिन ही रसिकों को सुखद अहसासों से सराबोर कर गया। सुर-साज़ के कई रंग देखने को मिले। सर्द शाम में जब विख्यात घटम वादक पं. विक्कू विनायकम ने अपने मटके पर थाप जताई तो ताल खिल उठी। युवाओं की धड़कन नीलाद्री कुमार की उंगलियों ने तो सितार पर तंत्रकारी के ऐसे रंग जमाए कि रसिक मंत्रमुग्ध हो गए। नीलाद्री सितार की सुरम्य राग परंपरा के सशक्त उत्तराधिकारी है। नई पीढ़ी के साधकों के लिए एक मिसाल भी।

सभा का आगाज़ शासकीय माधव संगीत महाविद्यालय के विद्यार्थियों के प्रशस्ति एवं ध्रुपद गायन से हुआ। राग धनाश्री, गौरी, यमन और खमाज के सुरों में सजी तानसेन की शान में गाई गई इस प्रशस्ति के बोल थे- 'ध्रुवकंठ स्वरोदगार'। इसके बाद विद्यार्थियों ने ध्रुपद की प्रस्तुति दी। तानसेन रचित बंदिश के बोल थे- 'जय शारदा देवी' राग हमीर के स्वरों में सजी एवं चौताल में निबद्ध इस बंदिश को विद्यार्थियों ने बड़े ही सलीके से पेश किया। पखावज पर संजय आफले ने एवं वायलिन पर अंकुर धारकर ने संगत की। विक्कू विनायकम जब अपने कुनबे के साथ तानसेन के मंच पर आए तो रसिकों ने उनका खूब स्वागत किया। अपने वादन का आगाज़ उन्होंने विशिष्ट रचना शिव तांडव से किया। तिश्र जाति की सात मात्रा की ताल त्रिपुट को उन्होंने बड़े ही ओजपूर्ण ढंग से बजाया। इसमें उन्होंने कई लयकारियाँ की। अगली ताल साढ़े सात मात्रा की थी, जो स्वयं विक्कू जी ने बनाई है। देवेरम नामक इस प्रस्तुति में भी उन्होंने खूब रंग भरे। वादन का समापन उन्होंने आदिताल की रचना कौनक्कोल से किया। इसमें भी उन्होंने अलहदा सी लयकरियाँ की। अपने इस प्रस्तुति को रसिक अरसे तक याद रखेंगे। संचालक संस्कृत अदिति कुमार त्रिपाठी ने आभार व्यक्त किया। कार्यक्रम का संचालन अशोक आनंद ने किया।

एक शाम सुरीली

हम सब बीते दो बरसों की तकलीफ़ को भुलाना चाहते हैं। जो खोया, जो ज़ख्म मिले उन पर मलहम लगाना चाहते हैं। तो इसका सबसे कारगर इलाज संगीत के सिवा और क्या हो सकता है? बस शायद इसीलिए भारत भवन ने 'संस्कृति और प्रकृति' समारोह का आयोजन किया और आगाज़ हुआ एक मीठी सी आवाज़ से। और उस आवाज़ का नाम है पटियाला घराने की कौशिकी चक्रवर्ती। लगा, जैसे किसी ने रुह पर गुलाब जल का ठंडा फ़ाहा रख दिया हो।

काली साड़ी पहने नाज़ुक सी कौशिकी जब स्टेज पर आईं, मुस्कुराईं तो लगा उन्हें देखूँ या सुनूँ? पल भर में श्रोताओं से रिश्ता बनाने वाली इस प्यारी सी गायिका के कंठ में सचमुच सरस्वती बैठी है। गायन के बीच हारमोनियम और तबले की जुगलबंदी और दोनों के शानदार सोलो परफॉरमेंस...। कौशिकी ने अपने पिता और गुरु से गायकी के ऐसे गुर सीखें हैं कि लगता है सुरों से खेल रही हैं। जब वो गा रही थीं- ''गजगामिनी डगमग डोले'' तब ऐसी हरकतें लीं कि वो डगमगाती चाल आँखों के सामने से गुज़र गई। फिर बारी आई 'सैयां मोरा रे, दिन रजनी कैसे बीते हाय' की... इस ठुमरी को उन्होंने ऐसे डूब के गाया कि आँखें नम हो गईं, किसी अनजान प्रेयसी का दर्द भीतर उतरता चला गया। उनकी पसंद की बंदिशों के बाद बारी थी फरमाइशी गानों की और उसमें पहला गाना था- आदि देव महादेव। उनका गाना शुरु हुआ और जैसे एक पल में वहाँ बैठे सब लोग किसी और लोक में पहुँच गए। अद्भुत माहौल था। कानों में दुआ की तरह घुल रहे थे उनके गाए गीत- ''कमल नयन वाले राम, सिया राम हो...''। ऐसा लालच हुआ जैसे वो शाम कभी ख़त्म ही ना हो। श्रोता फरमाइश करते रहें और कौशिकी पूरी करती रहें। इस सभा का आखरी गीत था- ''जय जय जग जननी...''। लोग झूमते रहे, भीगते रहे, डूबते-उतराते रहे संगीत के सागर में। बस, इस सागर का पानी खारा नहीं बल्कि मीठा था, बहुत मीठा, शहद जैसा। -**अनुलता राज नायर**

मिथिला की लोक कथा

रंगकर्म की समर्पित लेखिका, अभिनेत्री विभा रानी ने हाल ही में इंदौर के अनंत थियेटर में एक लोक-कथाकार (खिस्सा कहे खिसनी) का रुप धारण किया और मिथिलाचंल में प्रचलित 'साध रोए के' की प्रभावशाली प्रस्तुति दी। टेरेस थियेटर के अंतरंग माहौल में उनका यह रुप दर्शकों को बेहद भाया। विभा एकल कथा-कथन और अभिनय के सधे हुए स्तर के लिए प्रर्याप्त रंग उर्जा सहेजती है। उनका भावपूर्ण अभिनय यादगार बन गया।

ढफली पर ताल देती हुई वे लोक संगीत का पुट लेती है और इस तरह प्रस्तुति को एक सुंदर लयात्मक ताने-बाने में ढाल देती है। यह कथा दो सखियों फूल और पान की कहानी है। राजा की बेटी का नाम फूल है और महंत की बेटी का नाम पान है। इस लोक कथा में राजकुमारी फूल रोना चाहती है क्योंकि उसने अपने जीवन में कोई दुख नहीं देखा है। जबकि उसकी सहेली पान, जिसने अपने सभी सात बच्चों को खो दिया था, फूल को अपने ही बच्चों को मारने के लिए कई तरीके सुझाती है और इस तरह उसकी रोने की इच्छा पूरी करती है। आपको बता दें, खिसा कहे खिसनी, मिथिला की लोककथाओं की एक पारंपरिक शैली है। 'साध रोये के' (रोने का शौक-द डिज़ायर) मिथिला की लोक कथाओं के प्रदर्शन में से एक है। विभा जी की प्रस्तुति को देखने के लिये शहर के कई प्रतिष्ठित लेखक, पत्रकार, समाजसेवी पहुँचे। उन्होंने इस विदूषी लेखिका और रंगमंच अभिनेत्री के अभिनय की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। प्रकाश योजना प्रगल्भ श्रोत्रिय और मंच व्यवस्था अरविंद पोरवाल और धनवंत्री द्विवेदी की रही। विभा रानी एक पेशेवर अभिनेता, लोक कथाकार और लोक गायिका है। उन्होंने 11 नाटक किए हैं और 20 से अधिक नाटक लिखे हैं। विभा ने लाल कप्तान, अनवांटेड, मानसून फुटबॉल, वाईआरएफ, एसके मीडिया के सीरियल और वेब सीरीज महारानी फ़िल्मों में काम किया है। अपनी रंग यात्रा और नाट्य लेखन पर भी एक पुस्तक लिख रही हैं।

इंदौर में 'जल चक्कर'

धरती पर पानी की भीषण समस्या के कारण मानव जाति हाहाकार करने लगी है। पृथ्वीवासियों की चीत्कार पर इंद्र देव का सिंहासन भी डोलने लगा है। इसी कथ्य पर आधारित इंदौर के अनंत टेरेस थियेटर में नाटक 'जल चक्कर' का मंचन हुआ। वरिष्ठ रंगकर्मी प्रांजल श्रोत्रिय द्वारा निर्देशित इस सामयिक नाटक ने दर्शकों को पानी के प्रति अपनी जिम्मेदारी का अहसास तो कराया ही, हालात की गंभीरता के प्रति भी सचेत किया।

पृथ्वी लोक में नारद एक ऐसे गाँव में पहुँचते हैं जहाँ गाँव के लोग नाले का गहरी करण और उस पर स्टाप डेम बना रहे है। तब उन्हें कुछ संतुष्टि होती है और वे समझ जाते हैं कि मनुष्य ने एक बार फिर पानी की समस्या के समाधान के लिये अपने स्तर पर प्रयास प्रारंभ कर दिये हैं। वह किसी के भरोसे नहीं अपितु एक बार फिर अपने श्रम और संगठन की एकता से इस काम को पूरा करने में जुटे हैं। इस तरह नाटक समस्या के साथ एक समाधान के रुप में भी सामने आता है। निर्देशक प्रांजल श्रोत्रिय ने नाटक के विभिन्न दृश्यों को किसी कोलाज की तरह रचा।

नाटक में दर्शक हास्य, करुण, भय, क्रोध, वीर रस के सागर में गोते लगाते हुए गुज़रते हैं। राजकमल नायक रचित गीत एवं संतोष कौशिक का संगीत इस नाटक की एक और बड़ी ख़ूबी रहे। नाटक में नारद, इंद्र की भूमिका में क्रमशः धनवंत्री द्विवेदी, प्रगल्भ श्रोत्रिय ने दर्शकों को प्रभावित किया। इसी तरह सुषमा कोल बहादुर, सुषमा श्रोत्रिय, अरविंद पोरवाल, मोनिका शर्मा ने भी अपने अभिनय वाली विभिन्न भूमिकाओं के साथ न्याय किया। नाटक में आनंद गुप्ता, आकाश पंथी ने भी अलग-अलग भूमिकाएं निभाईं। कार्यक्रम के उद्घोषक गौतम मालवीय रहे।

सरोज स्मृति सम्मान

जनकवि मुकुट बिहारी सरोज स्मृति सम्मान 2020 और 2021 का आयोजन ग्वालियर के चैंबर ऑफ कॉमर्स सभागार में सम्पन्न हुआ। विष्णु नागर (दिल्ली) को 2020 तथा सुश्री जेसिंता केरकेट्टा (झारखण्ड) को 2021 के सम्मान से अलंकृत किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए वरिष्ठ आलोचक विजय बहादुर सिंह ने सरोज जी को समाज के सच को उजागर कर मनुष्यता को रास्ता दिखाने वाला कवि बताया। दोनों सम्मानित रचनाकार भी बोले। और अपनी रचनाओं का पाठ किया।

विष्णु नागर और जेसिंता केरकेट्टा के अलावा अतुल अजनबी (ग्वालियर) मालिनी गौतम (गुजरात) ने भी रचना पाठ किया । संचालन युवा रचनाकार शेफ़ाली शर्मा (छिंदवाड़ा) ने किया। कार्यक्रम की शुरुआत में न्यास की सचिव मान्यता सरोज ने कहा कि ग्वालियर की सांस्कृतिक साहित्यिक परम्परा और सरोज जी के साथ सबका नेह है। जब तक यह है तब तक यह आयोजन जीवित रहेंगे। अखिल भारतीय किसान सभा के संयुक्त सचिव बादल सरोज को मध्यप्रदेश किसान सभा के नाम से चैक सौंपते हुए विष्णु नागर ने कहा कि वे अपनी तरफ से शुभकामनाओं के साथ इस ऐतिहासिक आंदोलन में अपना कुछ योगदान भी जोड़ना चाहते हैं।

आवाज़ है पत्थरों में....

सुनने की मोहलत मिले तो, आवाज़ है पत्थरों में...एक बार फिर इस यक़ीन पर मोहर लगी। पत्थर के दामन पर देखते-देखते अलहदा से नक्श उभर आए। उनकी जुबाँ से अनायास ही फूट पड़ा- 'हम थे, हम हैं, रहेंगे धरती-नभ के गानों'। मधयप्रदेश के संस्कृति महकमे की पहल पर आयोजित शिल्पांकन शिविर का नज़ारा सचमुच ऐसा ही था। मध्यप्रदेश सहित राजस्थान, गुजरात, चैन्नई, केरल, दिल्ली और कुछ दीगर सूबों से आए शिल्पियों ने पाषाण की निष्प्राण देह में जीवन, प्रकृति और संस्कृति से जुड़े गहरे सरोकारों को उकेरा। पत्थर जैसे कठिन माध्यम में विषय वस्तु और आकार की संभावना की तलाश जितनी दुरुह है उतना ही सौंदर्य बोध और अलंकृति को मनचाहे परिष्कार के साथ अंजाम तक पहुँचाना गहरी तल्लीनता और समपर्ण की मांग करता है। लेकिन अपनी तमाम रचनात्मक निष्ठाओं को थामते हुए शिल्पकारों के समूह ने अपने-अपने फ़लक पर जो और जैसा रचा है, उसे हमारे समकालीन कला परिदृश्य में श्रेष्ठ सर्जना की कोटि में रखा जा सकता है। दिलचस्प यह कि यहाँ शिल्पियों की पांत में अग्रज-वरिष्ठ कलाकार और चिंतक हैं तो युवा सर्जक भी अपने कौशल की बानगी लिए दस्तक दे रहे हैं। ग़ौर करने वाली बात ये भी कि हज़ारों बरस पुरानी भारत की अत्यंत समृद्ध मूर्ति कला से प्रेरित होकर बाद की पीढ़ियों ने प्रयोग और नवाचार से निहायत नई शैलियों को अपनाया। अपनी कल्पनाओं के अंकन के नये आयाम रचे। चेहरे और भंगिमाओं से लेकर प्रतीक और बिंबों का इस्तेमाल करते हुए नये विचार की पीठिका भी रची। पत्थरों पर उभर आयीं ये इबारतें दर्शकों से संवाद करती रहीं।

मध्यप्रदेश शासन, संस्कृति विभाग एवं होमगार्ड, नागरिक सुरक्षा तथा आपदा प्रबंधन के संयुक्त तत्वाधान में यह 15 दिवसीय शिल्पांकन अनावृत कार्यशाला शिविर का आयोजन हुआ। शिविर में भूपेश कावड़िया (उदयपुर), पंकज गेहलोत (पाली), करुणा मूर्ति (चैन्नई), राजशेखरन नायर (तिरुअन्नतपुरम), जितेंद्र ओझा (बड़ोदा), डॉ. राकेश भटनागर (बैंगलोर), रोबिन डेविड (भोपाल), नीरज अहिरवार (भोपाल), चंद्रसेन जाधव (ग्वालियर), प्रमोद शर्मा (भोपाल), अनिल कुमार (भोपाल), खंडेराव पवार (इंदौर) एवं अन्य प्रतिभागी शिल्पकारों ने अपनी कलाकृतियों का निर्माण किया। मध्यप्रदेश की संस्कृति मंत्री उषा ठाकुर, अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक पवन जैन तथा संस्कृति संचालक अदिति त्रिपाठी ने सभी शिल्पकारों का अभिनंदन किया।

'रफ़ूगरी' की दरकार दुनिया को

प्यार के अफ़सानों और ज़िंदगी की नसीहतों को नज़्मों, ग़ज़लों और कविताओं में महफ़ूज़ करने वाली लेखिका ममता तिवारी अपनी नई क़िताब 'रफ़ूगरी' की सौगात लिए मित्र-स्वजनों के बीच पेश आयीं। भोपाल की झील किनारे एक सभागार में आयोजित समारोह में मशहूर व्यंग्यकार ज्ञान चतुर्वेदी, सिने अभिनेता-रंगकर्मी राजीव वर्मा, उद्घोषक-कला संपादक विनय उपाध्याय तथा शायर बद्र वास्ती ने ममता के कहे-लिखे पर अपनी राय जतायी और चुनी हुई नज़्मों का अपनी अपनी आवाज़ में पाठ किया।

डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी ने कहा कि इस क़िताब को लेखिका ने विशुद्ध रूप से प्रेम में रहकर लिखा है। यदि प्रेम सच?चा हो तो आप रोज़ प्रेम में पड़ते है। इसीलिए प्रेम और कविताओं का चलन है। प्रेमी और लेखक हर रोज़ कुछ नया रचता है। हमें आलोचकों की परवाह नहीं करनी चाहिए। आलोचक हमेशा हर चीज की परिभाषा मांगते है और कविता की कोई परिभाषा नहीं। उन्होंने एक प्रसंग सुनाते हुए कहा कि गुलाब को आलोचक सुंदर तब तक नहीं कहता जब तक उसके पंख एक-एक कर तोड़ नहीं देता। 'रफ़ूगरी' की तारीफ़ करते हुए राजीव वर्मा ने कहा कि आज समाज को रफ़ूगरी की ज्यादा आवश्यकता है। राजीव जी ने ममता जी की कुछ रचनाओं का पाठ भी किया। ग़ौरतलब है कि लेखिका ममता तिवारी ने बीते 10 सालों के अपने प्रकाशित किताबों को एक संग्रह में संग्रहित किया है। किताब के शीर्षक रफूगरी उन्होंने क्यों चुना, एक प्रसंग सुनाते हुए ममताजी ने खुलासा किया कि बचपन में माँ कांधे पर थैला टांगे मेरी उंगली थाम रफूगर की छोटी सी दुकान पर ले जाती थी। वैसे भी ढूंढने पर भी रफूगर मिलते कहाँ है आजकल? मेरी नज़रों में उस वक्त रफूगरी का पेशा दुनियाँ के महान पेशों में से एक था।

विनय उपाध्याय ने 'रफ़गरी' की रचनाओं को उन्मुक्त मन की उड़ान बताया। विनय ने तुम्हारी याद, उड़ान, हेलो? जिंदगी, रिवायती मुहब्बत आदि कविताओं को अपनी आवाज़ दी। कार्यक्रम का संचालन बद्र वास्ती ने तथा आभार व्यक्त किया अशोक निर्मल ने। संजय तिवारी ने पौधा भेंट कर अतिथियों का अभिनंदन किया।

आपले वाचनालय द्वारा कृति-सम्मान

इंदौर के आपले वाचनालय के संस्थापक संस्कृति पुरुष वसंत राशिनकर की स्मृति में अखिल भारतीय सम्मान समारोह सम्पन्न हुआ। मुख्य अतिथि मुंबई के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री, भारतीय रिज़र्व बैंक के डायरेक्टर आशुतोष रारावीकर थे। उन्होंने संस्था के रचनात्मक अवदान को प्रेरणास्पद बताया। संस्कृतिकर्मी अरुण डिके ने अपने प्रभावी संबोधन में न सिर्फ वसंतजी के कार्यों को शिद्दत से याद किया।

समारोह में लोणार के प्रतिभाशाली कवि विशाल इंगोले को कविवर्य वसंत राशिनकर स्मृति अ.भा. सम्मान से अलंकृत किया गया। उल्लेखनीय कृतियों को दिए जाने वाले सम्मान के तहत विजयकुमार देशमुख, विनय मिरासे 'अशांत', सुरेश पाचकवड़े, प्रभाकर शेलके और मेधा खीरे को उनकी सृजनात्मक साधना के लिए अलंकृत किया गया। रामू भैय्या दाते स्मृति पुरस्कार शिक्षा के क्षेत्र में गहरी निष्ठा तथा उपलब्धि के लिए राधिका धर्माधिकारी को दिया गया। जयंत गुप्ता की विशिष्ट कृति 'आस्था की अनुगूँज' का श्रीति राशिनकर द्वारा किये गए मराठी अनुवाद 'दिव्यतेची प्रचिती' का विमोचन हुआ। 'वसंत काव्य संध्या' में चुनिंदा रचनाकारों ने रचना पाठ किया। अनिल गजभिये, मधुसुदन तपस्वी और अरविन्द जवलेकर भी ख़ासतौर पर उपस्थित रहे।

नादस्वरम्

वो शाम थी जब भोपाल के रवींद्र भवन का मुक्ताकाश मंच गूँज रहा था एक लहराती आवाज़ से। करुणाधाम आश्रम 'नादस्वरम्' की आठवीं कड़ी लेकर आया था। शाम हुई तो दीप जले और हरिहरन की भक्ति में डूबी आवाज़ कानों में घुलने लगी- तुम्हीं मेरे रसना तुम्हीं मेरे रैना, तुम्हीं मेरे श्रवणा, तुम्हीं मेरे नैना... किसी और लोक में ले चले थे हरिहरन और मन झूम रहा था ये भजन सुनते हुए- गिरिजा भवानी शिव रंजनी।

शाम जवाँ होने लगी तो उसके रंग भी बदलने लगे। भक्ति रस के बाद हरिहरन ने सबको इश्क़ का स्वाद चखा दिया। ग़ज़लों की रुमानी दुनिया में चल दिए सारे श्रोता। पहली ग़ज़ल थी मोमिन की- 'असर उसको ज़रा नही होता, रंज राहत फिज़ा नही होता'। अब आप ख़ुद ही अंदाज़ा लगा लें कि क्या आलम होगा शाम का। अभी थोड़ा बहुत होश बाक़ी रहा होगा तो हरिहरन ने अपनी एक मशहूर ग़ज़ल छेड़ दी- 'मरीज़े इश्क़ का क्या है, जिया, जिया न जिया, है एक सांस का झगड़ा लिया लिया ना लिया'... यक़ीन मानिए ऐसी शामें दुआओं से नसीब होती हैं। ग़ज़लों के बाद बारी आई फ़िल्मी गीतों की। पहला गाना था रोज़ा जानेमन, फिर नगमे हैं, शिकवे हैं, बातें हैं... फिर चप्पा चप्पा चरखा, फिर बाहों के दरमियाँ... हर गाने के पहले, अंतरों के बीच में हरिहरन अपनी ज़बरदस्त गायकी के नमूने पेश करते रहे। दो घंटे में न जाने क्या कुछ पा लिया, बदले में दिल का एक हिस्सा वहीं मुक्ताकाश की सीढ़ियों पर छूट गया जो आसमान को ताकत कहता रहेगा- चन्दा रे चन्दा रे कभी तो ज़मीं पर आ... कार्यक्रम का संचालन कर रहे विनय उपाध्याय, जिनकी आवाज़ ये तसल्ली देती है कि अब जो कानों में पड़ेगा वो मीठा ही होगा। और यक़ीनन हुआ भी ऐसा ही। इस मौके पर करुणाधाम के वर्तमान पीठाधीश्वर पंडित सुदेश शाडिल्य महाराज, मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान और पूर्व मंत्री पीसी शर्मा ने हरिहरन का सारस्वत अभिनंदन किया। परंपरानुसार आश्रम का वार्षिक कैलेंडर भी जारी हुआ जो इस बार सोलर संस्कारों के सांस्कृतिक और वैज्ञानिक महत्व के साथ प्रकाशित हुआ है। - ***अनुलता राज नायर***

डिप्लोमा सेरेमनी में चौबे हुए सम्मानित

नई पीढ़ी की बालिकाओं में आत्मनिर्भरता और कौशल विकास की दिशा में सशक्तिकरण के उद्देश्य से सीहोर में तकनीकी अभियान का संचालन किया जा रहा है। ढींगरा फ़ैमिली फाउण्डेशन, भारत-अमेरिका द्वारा 'बालिकाओं के लिए नि:शुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र' का संचालन इस तारतम्य में सफलता का प्रतीक है। 'डिप्लोमा सेरेमनी' समारोह में सैकड़ों प्रशिक्षित छात्राओं को डिप्लोमा प्रदान किये गये। विश्व रंग एवं कुलाधिपति, रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल संतोष चौबे ने छात्राओं से शिक्षा, कौशल और तकनीक के बेहतर समन्वय से भविष्य को संवारने की शुभकामनाएँ दी। श्री चौबे को ढींगरा फ़ैमिली फाउण्डेशन, भारत-अमेरिका द्वारा इस डिप्लोमा सेरेमनी में सम्मानित भी किया गया। इस अवसर पर कथाकार पंकज सुबीर, वरिष्ठ साहित्यकार सौरभ पाण्डेय, समाजसेवी अजय चौबे ख़ासतौर पर मौजूद रहे।

देश के गीत, देश का राग

भारत म्हारो देस, पूतरो वेश कि धन-धन भारती... बोलो जय-जयकार उतारो आरती... मालवा की मटियारी महक में सराबोर वतनपरस्ती का यह तराना जब मौसिक़ी की लय-ताल में परवान चढ़ा तो जनजातीय संग्रहालय का सभागार अनूठे रोमांच में डूब गया। ये स्वराज गीतों की सभा थी। मंच पर उज्जैन से आयी सुपरिचित लोक गायिका तृप्ति नागर कलाकार दल के साथ अपनी देशज बोली में रचे-बसे गीतों की श्रृंखला लिए श्रोताओं के रुबरु थी। मौका आज़ादी के अमृत महोत्सव का था और इस निमित्त जनजातीय लोक कला एवं बोली विकास अकादेमी ने मध्यप्रदेश के चारों लोक अंचलों मालवा, बुंदेलखंड, निमाड़ और बघेलखंड की वाचिक परंपरा से जुड़े देशभक्ति गीतों के गायन का समारोह परिकल्पित किया। दिलचस्प यह कि जनजातीय और लोक समुदाय समान रुप से यहा 14 से 16 दिसंबर के दरमियान सक्रिय था। भील चित्रकार पद्मश्री भूरी बाई ने समारोह का शुभारंभ आंचलिक सुराज गीतों पर केंद्रित भील एवं गोंड जनजातीय चित्रों की प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए किया। प्रदर्शनी में कलाकार धावक सिंह उइके, मोहन सिंह श्याम, सुभाष व्याम, सविता बारिया, गीता बारिया के द्वारा बनाये 28 चित्रों को प्रदर्शित किया गया।

रुपराम कुशराम और साथी, डिंडोरी द्वारा गोण्ड जनजातीय सुराज गीतों से सभा की शुरुआत हुई। जिसमें उन्होंने रीना, करमा-ठाड़ी, सैला-रीना दादरा, करमा झूमर, दादरा, फाग झूला, करमा- तिरंगा झण्डा, देश भक्ति, भारत की जय बोलो, भारत है हमार..., जैसे कई गीतों की प्रस्तुति दी। दूसरी प्रस्तुति अरविंद पटेल और समूह द्वारा बघेली सुराज गीत की थी, जिसमें कलाकारों ने भारत माता जिउ से प्यारी हो..., हमसे न करा तू लड़ाई दुश्मन, जन हमसे न करा तू लड़ाई..., देखा पुरुव में आज सुबह एक नई रोशनी फूटी थी..., लिख लिख चिठिया भेजाबै हो सिपाही..., बचावा दादा हो बचावा भईया हो आपन जनम भुइया का बचावा राजा हो..., पहिली सुमिरौं धरती मातु का..., जैसे अन्य स्वराज गीतों की गुंजार बिखेरी।

दूसरे दिन तृप्ती नागर और साथी, उज्जैन द्वारा मालवी सुराज गीत एवं कपिल चौरसिया और साथी, सागर के कलाकारों द्वारा बुन्देली सुराज गीत की प्रस्तुति दी गई। आजादी वो गोरी, भारत नीहाल है, मेनत की बेला से, खुसहाल है हो जी, गोरो बादल को आला उदल को हर हर शंकर को भोला शंकर को..., धीरे आन दे रे, जरा धीरे आन दे, आलकी के पालकी, जै कन्हैयालाल की..., भारत म्हारो देस पूतरो वेश कि धन-धन भारती बोलो जय जयकार उतारो आरती... जैसे मालवी गीतों की सौगात लिए तृप्ति नागर के साथ राधा मेहता, करुणा सिसोदिया, शैलेंद्र भट्ट, अजय मेहता उपस्थित थे। बुन्देली सुराज गीत लिए कपिल चौरसिया, रमेश चौरसिया, राकेश कटारया, विजय बड़वानी, मंच पर प्रकट हुए।

समापन दिवस जयन्त विश्वकर्मा और साथियों ने आल्हा सुराज गीत और शिवभाई गुप्ता और साथी, खरगोन द्वारा निमाड़ी सुराज गीतों ने माहौल को चरम पर पहुँचाया। शुरुआत आल्हा सुराज गीत से हुई। आल्हा के बावन खंड से कलाकारों ने जैत खम्म्ब की लड़ाई के प्रसंग में जैत खंभ के गाड़ने के लिए हुए युद्ध की गाथा को संगीत में पिरोकर प्रस्तुत किया। इस शाम दूसरी प्रस्तुति निमाड़ी सुराज गीत की थी। जागो-जागो किसाण भाई..., ये सोवण को बंदी जमानो, अब देश का आजाद बनाणो... और टंट्या मामा पर आधारित गीत... गाकर शिव गुप्ता ने आज़ादी के आन्दोलन में जनजातीय और लोक समुदाय के उत्सर्ग की महिमा का बखान किया।

ज्ञान परंपरा के विस्तार का नया अवसर

संस्कृति, स्वराज, दर्शन, न्याय और नीति के प्रतापी नायक विक्रमादित्य की विरासत का स्मरण करते हुए व्याख्यान और संवाद की श्रृंखला का आरंभ उज्जैन में हुआ। महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ और विक्रम विश्व विद्यालय की साझा पहल पर आयोजित इस विचार प्रवण समागम में अग्रणी शिक्षाविद् और साहित्यकार संतोष चौबे ने संबोधित किया।

'भारतीय ज्ञान परंपरा एवं नई शिक्षा नीति' विषय को विस्तार देते हुए चौबे ने कहा कि भारतीय ज्ञान परंपरा विस्तृत है। इसे नई शिक्षा नीति के साथ जोड़ने से इसका लाभ विद्यार्थियों को व्यक्तिगत और व्यावसायिक स्तर पर मिलेगा। अब तक शिक्षा केवल बंद कमरों और एक परिसर तक सीमित थी। नई शिक्षा नीति ने इसका विस्तार कर दिया है। चौबे ने कहा कि अब पढ़ाई करने वाले विद्यार्थियों को यह चिंता नहीं करना होगी कि उन्हें रोजगार कैसे मिलेगा। पढ़ाई के दौरान उन्हें कौशल सिखाया जाएगा। इससे उन्हें रोजगार में मदद मिलेगी। स्वरोजगार के लिए उन्हें स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों से रुबरु करवाया जाएगा। आगे उन्होंने बताया कि महर्षि सांदीपनि से श्रीकृष्ण ने जो 64 कलाएं सीखीं उन्हें भी पाठ्यक्रम में शामिल करने का काम शुरु हो गया है। व्याख्यान से पूर्व मध्यप्रदेश के उच्च शिक्षा मंत्री मोहन यादव ने कहा कि सम्राट विक्रमादित्य की गाथा को वृहद पैमाने पर महत्ता को स्थापित करना है। ऐसे कार्यक्रम हर विश्वविद्यालय में आयोजित किए जाएंगे। इस अवसर पर शोधपीठ के निदेशक श्रीराम तिवारी, विक्रम विश्वव विद्यालय के कुलपति अखिलेश कुमार पांडेय, कुलसचिव प्रशांत पौराणिक, अशोक प्रजापत और प्राध्यापक शैलेंद्र कुमार शर्मा मौजूद थे।

प्रसंगवश याद आए गुरु–शिष्य

वक़्त बीत जाता है, याद रह जाती है। समय के पन्नों पर उभर आयी इन्हीं स्मृतियों का लेखा–जोखा किसी शख़्सियत को देखने–समझने का आईना बन जाता है। श्रीराम ताम्रकर और सुनील मिश्र की यादों का सिलसिला भी उनके चाहने वालों के बीच ऐसा ही खुलता रहा। गुरु और शिष्य का एक आदर्श–रचनात्मक रिश्ता जीने वाले ये दोनों सिने समीक्षक–लेखक और संस्कृतिकर्मी दुनिया–ए–फानी को अलविदा कह चुके हैं।

संस्कृति संचालनालय, मध्यप्रदेश की ओर से इन दो फ़िल्म विश्लेषकों पर एकाग्र दो दिवसीय 'स्मृति प्रसंग' भोपाल स्थित जनजातीय संग्रहालय सभागार में आयोजित किया गया। इस दो दिवसीय कार्यक्रम में संवाद सत्रों के साथ–साथ स्व. मिश्र द्वारा लिखित नाटकों का प्रदर्शन भी किया गया। शुभारंभ सत्र में संचालक, संस्कृति अदिति कुमार त्रिपाठी, उप संचालक वंदना पाण्डेय, रंगकर्मी आलोक चटर्जी, फ़िल्म कला निर्देशक जयंत देशमुख और टैगोर विश्व कला केन्द्र के निदेशक विनय उपाध्याय मौजूद रहे। विनय उपाध्याय ने स्मृति प्रसंग की प्रस्तावना रखने के साथ ही श्रीराम ताम्रकर और सुनील मिश्र के योगदान की विस्तार से चर्चा की। उन्होंने कहा कि श्रीराम ताम्रकर ने सिनेमा के लेखकों को तैयार किया। इस फेहरिस्त में सुनील भी शामिल रहे। विनय जी ने कहा कि देश का सिरमौर म.प्र. का संस्कृति कर्म है। उसे इस काबिल सुनील जैसे निष्ठावान कर्मचारियों ने बनाया। जयंत देशमुख ने कहा कि ज़िंदगी में कुछ लोग होते हैं जिनको खोने का दुख बहुत गहरा होता है। मेरे लिए सुनील उनमें से एक था। मेरा व्यक्तिगत मानना है कि हिन्दी में होने वाला सिनेमा अंग्रेज़ी में लिखा जाता है। मैं हिन्दी के लेखन में सुनील मिश्र का यादगार योगदान है। आलोक चटर्जी ने अपने उद्बोधन में सुनील और ताम्रकर जी से हुई मुलाकातों को याद करते हुए कहा कि इन दोनों व्यक्तियों ने उनके मन पर रचनात्मक छाप छोड़ी है। आलोक ने भावुक लहज़े में कहा कि हमें प्रतिभाओं को उनके जीते–जी भी सम्मान से याद करने का संस्कार अर्जित करना चाहिए।

पहली शाम नाट्य निर्देशक आनंन्द मिश्रा के निर्देशन में सुनील मिश्र द्वारा लिखित नाटक तात्या टोपे का मंचन हुआ। स्मृति प्रसंग के दूसरे दिन रंगमंच और सिनेमा के वरिष्ठ अभिनेता राजीव वर्मा, मुकेश तिवारी, नाट्य निर्देशक संजय उपाध्याय तथा संस्कृतिकर्मी वाणी त्रिपाठी ने अपनी स्मृतियाँ साझा की। राजीव वर्मा ने सुनील के विनम्र और शालीन कृती–व्यक्तित्व की चर्चा की। संजय उपाध्याय ने सुनील के नाट्य लेखन को रेखांकित किया। मुकेश तिवारी ने सुनील मिश्र की सिनेमाई समझ और विशेषकर नयी प्रतिभाओं पर सहानुभूतिपूर्वक निगाह बनाए रखने की बात कही। वाणी त्रिपाठी ने भावुक मन से सुनील की कर्मठता और मिलन सारिता पर प्रकाश डाला। इस शाम के.जी. त्रिवेदी के निर्देशन में जातक कथा पर आधारित सुनील मिश्र के लिखे नाटक का मंचन किया गया।

विश्व हिंदी दिवस पर भाषा–विमर्श

हिन्दी के प्रति मान और गौरव की अनुभूति से भरा एक सार्थक विमर्श वनमाली सृजन पीठ की खंडवा इकाई द्वारा किया गया। विश्व हिन्दी दिवस के निमित्त हुए इस विचार–संवाद में सीवीरामन विश्व विद्यालय के कुलपति अरुण जोशी सहित प्रतिष्ठित लेखकों ने शिरकत की। संयोजन सृजन पीठ के उपाध्यक्ष गोविन्द शर्मा और समन्वयक लुकमान मसूद ने किया।

अरुण जोशी ने कहा कि तकनीकी, व्यावसायिक और कृषि पर केंद्रित लेखन भी साहित्य है। शब्दानुवाद और भावानुवाद का अंतर समझ कर हिंदी को और आगे लाया जा सकता है। संवाद में हिस्सा लेते हुए राष्ट्रीय सम्मान से अलंकृत व्यंग्यकार कैलाश मंडलेकर ने जोड़ा कि हिंदी को राजभाषा से राष्ट्रभाषा बनाने का काम 1947 मे ही हो जाना था। राष्ट्र की पहचान उसकी भाषा ही होती है। लोकधर्मी कवि अरुण सातलवे ने कहा कि लोकभाषाओं से मिलकर ही खड़ी बोली आज की हिंदी बनी है। इसमें बोलियों और भाषाओं की मिठास है।

कवि शैलेन्द्र शरण ने हिन्दी के वर्चस्व को रेखांकित करते हुए बताया कि हिंदी पत्रिकाएँ आज विदेशों के भारी संख्या में प्रकाशित हो रही हैं। कम्युनिटी रेडियों भी हिंदी का प्रचार कर रहे हैं। रामन विश्व विद्यालय के प्रति–कुलपति शहज़ाद कुरेशी ने शिक्षा संस्थानों की भूमिका का ज़िक्र किया। कहा कि दूतावास और विश्वविद्यालयों की महती भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता। भाषा का जो स्वरूप सम्प्रेषण कर रहा है, वही मानक स्वरूप है। कुलसचिव रवि चतुर्वेदी ने भी संवाद में शिरकत की। हिंदी जब गिरमिटिया की भाषा थी तब गुलामों की भाषा थी, हिंदी आज भारतीय सीईओ और प्रोफेशनल्स की भाषा है। सत्ता और शासकों की भाषा है। संचालक गोविंद शर्मा ने इस उद्गार के साथ विमर्श की बुनियाद रखी। आभार वक्तव्य में लुकमान मसूद ने कहा कि अपनी भाषा अपना गौरव, जब यह भाव भारतीयों में आ जायेगा तब प्रत्येक दिवस हिंदी दिवस होगा।

स्वराज वंदन

विवेकानंद जयंति पर स्वराज संस्थान ने भोपाल के शहीद भवन में 'स्वराज वंदन' की संगीतमय सभा आयोजित की। संगीतकार राजीव सिंह ने संगीत प्रस्तुति का आरंभ भारत की वंदना से किया। भारत के गौरवशाली इतिहास में ऐसे कई अनछुए पहलू हैं, जो आम जनमानस में अंकित नहीं है अथवा विस्तारित नहीं हो पाए हैं। राजीव सिंह द्वारा दी गई सामूहिक प्रस्तुति कई

मानकों में इतिहास के पन्नों को पलटते हुए गद्य और काव्य की वाचिक परंपरा को गीत संगीत से बांधती है। राजीव सिंह, स्वामी विवेकानंद आनंद आनंद गीत से स्वामी जी के नैतिक मूल्य आदर्शों से दर्शकों में ऊर्जा का संचार करते हैं तो वही विक्रमादित्य के पंचांग वेद मंडल पर आधारित गीत- यह देश की धरती पर लहराए तिरंगा से गौरव क्षण का एहसास कराते हैं। बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय के वंदे मातरम को वैसे तो कई भाषा-बोली में रचा और पढ़ा गया है किन्तु जब वंदे मातरम प्रादेशिक या लोक अंचल की मिट्टी की महक के साथ संगीतबद्ध किया गया हो तो सच में बारिश की पहली बूँद से आई सौंधी महक देकर जाता है। वंदे मातरम, राजस्थान, गुजरात, बंगाल के पारंपरिक लोक वाद्य और तालों से रचा बसा संगीत, राजीव सिंह की स्वर लहरियों से दर्शकों के कानों में रस घोलता है। इस पूरी प्रस्तुति में सह गायक के साथ संगीत पर ढोल सारंगी, हारमोनियम आदि संगीत कलाकारों का सहयोग रहा।

बोलियों के साहित्य सम्मान

साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, मध्यप्रदेश शासन संस्कृति विभाग, भोपाल ने मध्यप्रदेश की छः बोलियों के साहित्यिक कृति पुरस्कारों की घोषणा कर दी है। वर्ष 2018 हेतु 'मालवी' के लिए संत पीपा स्मृति पुरस्कार हेमलता शर्मा-इंदौर, कृति- 'मालवी डबल्यो', 'निमाड़ी' के लिए संत सिंगाजी स्मृति पुरस्कार प्रमोद त्रिवेदी 'पुष्प'- राजपुर (जिला-बड़वानी), कृति- 'तमकऽ कइ करनुज', 'बघेली' के लिए विश्वनाथ सिंह जूदेव स्मृति पुरस्कार अनूप अशेष-सतना, कृति- 'बानी आदिम', 'बुंदेली' के लिए छत्रासाल स्मृति पुरस्कार दीन दयाल तिवारी-टीकमगढ़, कृति- 'बेताल की चैकड़िया' दिया गया है। 'भीली' एवं 'गोंडी' पुरस्कार हेतु कोई भी कृति प्रविष्टि के रुप में प्राप्त नहीं हुई। वर्ष 2019 हेतु 'मालवी' के लिए संत पीपा स्मृति पुरस्कार सतीश दवे- उज्जैन, कृति- 'बात को बतंगड़', 'निमाड़ी' के लिए संत सिंगाजी स्मृति पुरस्कार जगदीश जोशीला- गोगांवा (जिला-खरगोन), कृति- 'निमाड़ी धंधोरया', 'बघेली' के लिए विश्वनाथ सिंह जूदेव स्मृति पुरस्कार डॉ. अंजनी सिंह 'सौरभ'-सीधी, कृति- 'ठठरा माँ साँसि', 'बुंदेली' के लिए छत्रासाल स्मृति पुरस्कार डॉ. राज गोस्वामी-दतिया, कृति- 'मौं ढाँकें करिया में' दिया गया है। 'भीली' और 'गोंडी' पुरस्कार हेतु कोई भी कृति प्रविष्टि के रुप में प्राप्त नहीं हुई। पुरस्कार के तहत 51 हज़ार रुपए की राशि भेंट की जाती है।

प्रेम रंगीले 'बातों के चित्र'

''एक लड़की तितलियाँ बटोरती है अनगिनत/ कहती है कि प्रेम चिट्ठियाँ हैं/ ऐसी, जो शायद उसके लिए नहीं लिखी गई/ इसलिए वह उन्हें पढ़ नहीं पाती/ पर, उस लड़की की उँगलियों पर रंग हैं/ उन प्रेम चिट्ठियों के...'' हिन्दी कविता के परिसर में उदीयमान विशाखा राजुरकर प्रेम-गंधित रचनाओं का गुलदस्ता लिए 'कथा सभागार' में पेश आयीं। आईसेक्ट प्रकाशन, भोपाल ने हाल ही उनकी कविताओं का संग्रह 'बातों के चित्र' प्रकाशित किया है। प्रेम कविताओं की इस पुस्तक का लोकार्पण रवीन्द्रनाथ टैगोर वि.वि. के कुलाधिपति संतोष चौबे, कथाकार मुकेश वर्मा, कवि बलराम गुमास्ता ने मिलकर किया। विशाखा ने इस संग्रह की चुनिंदा कविताओं का भावपूर्ण पाठ किया। इस मौके पर विशाखा की माँ लेखिका करुणा राजुरकर तथा उद्घोषक-साहित्य सेवी पिता राजुरकर राज तथा आईसेक्ट पब्लिकेशन के प्रबंधक महीप निगम भी उपस्थित थे।

संतोष चौबे ने अपने उद्बोधन में कहा कि इस कविता संग्रह की सभी कविताएँ बातों का एक लयबद्ध सिलसिला है जो सीधे आपके मन के भीतर प्रवेश करता चला जाता है। यह कविता संग्रह हमें हमारी परंपरा की याद दिलता है। हमारी परंपरा में चित्रों की बात भी होती है और बातों के चित्र भी होते हैं। संग्रह में कुछ गद्य कविताएँ भी है। ये गद्य कविताएँ भी बहुत सुंदर हैं। मुकेश वर्मा के अनुसार विशाखा ने अपनी कविताओं में प्रेम के व्यापक दृष्टिकोण को रेखांकित किया है। यह प्रेम जीवनसाथी के लिए है। माँ के लिए है। मित्रों के लिए है। प्रकृति के लिए है। आने वाले कल के लिए भी है। बलराम गुमास्ता ने अपने उद्बोधन में जोड़ा कि विशाखा ने अपनी कविताओं के माध्यम से प्रेम का एक अद्भुत संसार रचा है। आज संसार को सबसे ज्यादा जरूरत प्रेम की ही है। लेखिका रमा निगम ने कहा कि बातों के चित्र कविता संग्रह की सभी कविताएँ हमारे मन में प्रेम की ज्योत जगाती है। करुणा राज ने अपनी बेटी की उपलब्धि पर फ़क्र करते हुए बताया कि उसके व्यक्तित्व में रचनात्मकता के प्रति गहरा चाव बचपन से ही था। पिता राजुरकर राज ने भी विशाखा के लड़कपन को याद करते हुए कहा कि अध्ययन और सृजन दोनों क्षेत्रों में विशाखा ने समान रुचि रखते हुए बेहतर संतुलन बनाए रखा। कार्यक्रम का संचालन आईसेक्ट पब्लिकेशन के संपादक कुणाल सिंह ने किया।

स्वागत उद्बोधन वनमाली सृजन पीठ के संयोजक संजय सिंह राठौर ने दिया। आभार ज्योति रघुवंशी ने व्यक्त किया।

विशाखा

आईसेक्ट पब्लिकेशन को राष्ट्रीय पुरस्कार

आईसेक्ट पब्लिकेशन के प्रबंधक महीप निगम फेडरेशन ऑफ इंडियन पब्लिशर्स के सम्मान ग्रहण करते हुए

साहित्य, विज्ञान, कौशल विकास सहित अनेक विषयों पर देश-विदेश के वरिष्ठ एवं नवोदित लेखकों की रचनाओं का लगातार उत्कृष्ट प्रकाशन कर रहे आईसेक्ट पब्लिकेशन भोपाल को फेडरेशन ऑफ इंडियन पब्लिशर्स द्वारा एक्सिलेंस इन बुक पब्लिकेशन अवॉर्ड 2021 प्राप्त हुआ है। भारत सरकार के विदेश एवं शिक्षा राज्य मंत्री राजेन्द्र रंजन सिंह ने नई दिल्ली में आयोजित एक गरिमामय आयोजन में यह अवार्ड वितरित किये। आईसेक्ट की ओर से प्रकाशन प्रबंधक महीप सिंह ने अवार्ड ग्रहण किये। ग़ौरतलब है कि आइसेक्ट पब्लिकेशन को यह अवार्ड लगातार 2 वर्षों से प्राप्त हो रहा है। इस बार सांस्कृतिक पत्रिका 'रंग संवाद', विश्वरंग कॉफी टेबल बुक और शोध ग्रंथ 'भारत में पत्रिकाएँ' का पुरस्कार हेतु चयन हुआ है।

नागर को लाइफ टाइम अचीवमेंट अवॉर्ड

पत्रकार-लेखक विनोद नागर को जीवन पर्यंत लेखन एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए लाइफ टाइम अचीवमेंट अवॉर्ड से सम्मानित किया गया है। यह सम्मान मप्र के पूर्व गृह मंत्री उमाशंकर गुप्ता और मध्यप्रदेश राज्य सामान्य वर्ग कल्याण आयोग के अध्यक्ष शिव चौबे ने भोपाल में एक समारोह में प्रदान किया।

कर्मचारी नेता स्व. सत्यनारायण तिवारी की स्मृति में समिति 18 वर्ष से समाज के विभिन्न क्षेत्रों में उत्कृष्ट योगदान करने वालों का सम्मान करती आई है। नागर मीडिया इनिशिएटिव फॉर वैल्यूज के संस्थापक सदस्यों में से एक हैं और पचास वर्षों से लेखन एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में अपनी कलात्मक दृष्टि और वैचारिक चेतना के साथ निरंतर सक्रिय हैं। श्री नागर कई साहित्यिक और सांस्कृतिक संस्थाओं से भी जुड़े है।

नाम की कला के नायाब नमूने

नए और अनूठे की संभावनाएँ हमेशा ही नई कौंध जगाती रही हैं लेकिन भोपाल की चित्रकार रेखा भटनागर की उंगलियों ने जो कर दिखाया है वो कई मायनों में लीक से हटकर है, अलहदा है। तेरह हज़ार से भी ज़्यादा नामों को उन्होंने अपनी रेखांकन शैली में कुछ इस तरह सिरजा है कि नामधारी व्यक्ति अपने कलात्मक दस्तख़त पाकर सुखद आश्चर्य से भर उठता है! भाषा की दृष्टि से देखें तो हिन्दी के अलावा वे तमिल, कन्नड़, उर्दू, फ्रेंच और अंग्रेज़ी में नामों की चित्रकृतियाँ उकेर चुकी हैं। इस फेहरिस्त में साहित्य, कला, संस्कृति, समाज, शिक्षा, राजनीति और मनोरंजन की दुनिया के नामचीन हस्ताक्षर शामिल हैं। इस रचनात्मक नवाचार के साथ पेश आने वाली ये इकलौती कलाकार हैं। अक्षरों-शब्दों की लिपियों में चित्रांकन की कल्पना लिए रेखा भटनागर एक नये अभियान पर निकल पड़ी है। उनके गुज़िश्ता सफ़ा को देखें तो मूर्धन्य-चित्रकार गुरु वाकणकर से मिले कला ज्ञान और सीखों के प्रति कृतज्ञता से भरकर उन्होंने वृहद शोध-अध्ययन कर पीएचडी की उपाधि हासिल की। बीते चार दशकों में सैकड़ों चित्रकृतियाँ बनाईं। प्रदर्शनियाँ कीं। नौनिहाल पीढ़ी के चितेरों को नि:शुल्क प्रशिक्षण दिया और उनकी प्रतिभा को खिलने-महकने के नए आसमान भी दिये। रेखा कविताएँ भी लिखती हैं और कार्यशालाओं में संवाद के लिए भी आमंत्रित की जाती रही हैं। साहित्य और कलाओं के बीच उनकी रचनात्मक आवाजाही लगातार बनी हुई है। जिसका प्रभाव उनके सृजन में साफ़तौर पर दिखाई देता है। रेखा जी कई सांस्कृतिक संस्थाओं से भी सम्बद्ध हैं। उनकी कलाकृतियाँ एकल और सामूहिक प्रदर्शनियों में प्रदर्शित होती रही है। नामांकन के कला पक्ष पर उनका कहना है कि वे अपनी मालवा की सरज़मीं की पारंपरिक शैली को विस्तार दे रही हैं। मध्यप्रदेश सहित दीगर राज्यों में उन्हें सम्मानित किया गया है।

गीतों से गुलज़ार एक शाम

सुर-ताल में बंधे गीतों की सामूहिक गुंजार के बीच टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र के नवनिर्मित परिसर का शुभारंभ हुआ। रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्व विद्यालय के महत्वपूर्ण सांस्कृतिक प्रकोष्ठ में आयोजित सुरमयी सभा को संबोधित करते हुए कुलाधिपति संतोष चौबे ने कहा कि शीघ्र ही वृन्दगान का एक समूह गठित किया जाएगा। टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के छात्र-छात्राओं का यह दल भविष्य में हिन्दी की प्राचीन और आधुनिक कविताओं के साथ ही रंग संगीत, विज्ञान गीत तथा राष्ट्रीय चेतना से जुड़े गीतों की प्रस्तुति तैयार करेगा।

टैगोर कला केन्द्र के निदेशक विनय उपाध्याय ने महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की वासंती कविताओं का ज़िक्र करते हुए कहा कि निराला की संगीत से गहरी दिलचस्पी रही। वे राग-ताल के जानकार थे। टैगोर के रवीन्द्र संगीत से निरालाजी गहरे प्रेरित रहे। विश्व विद्यालय के कुलपति डा. ब्रह्मप्रकाश पेठिया, एजीयू की निदेशक अदिति चतुर्वेदी, रजिस्ट्रार पुष्पा असिवाल, मानविकी और कला संकाय की डीन डा. संगीता जौहरी तथा नाट्य विद्यालय के निदेशक मनोज नायर इस मौक़े पर विशेष रुप से उपस्थित थे।

समारोह का मुख्य आकर्षण रही टैगोर नाट्य विद्यालय के वृन्द समूह की संगीत प्रस्तुति। ढलती हुई शाम के गहराते अहसासों के बीच संगीतकार संतोष कौशिक के संयोजन में छात्र कलाकारों ने निरालाजी की कालजयी कविता ''नव पर नव स्वर दे'' के साथ ही नागार्जुन की कविता 'अकाल और उसके बाद' का लयबद्ध गान किया। पानी, श्रम और प्रकृति की महिमा से जुड़ी रचनाओं का भी समूह गान हुआ। प्रस्तुति के रचनात्मक संदर्भों पर प्रकाश डालते हुए संतोष कौशिक ने बताया कि नाट्य संगीत से जुड़कर शब्द और स्वर की उर्जा संप्रेषण का व्यापक दायरा बना लेती है। इसके लिए निजी तौर पर संवेदनशील होने की दरकार कलाकारों से होती है। संचालन नाट्य विद्यालय के समन्वयक विक्रांत भट्ट ने किया।

म.प्र. संस्कृति महकमे का अलंकरण समारोह

मध्यप्रदेश शासन संस्कृति विभाग द्वारा गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर आयोजित एक गरिमामय समारोह में श्रेष्ठ कृतियों के सर्जकों को सम्मानित किया गया। अलंकरण समारोह में राष्ट्रीय कबीर सम्मान, राष्ट्रीय मैथिलीशरण गुप्त सम्मान, राष्ट्रीय शरद जोशी सम्मान, राष्ट्रीय इकबाल सम्मान और राष्ट्रीय कवि प्रदीप सम्मान प्रदान किए गए। शाल, श्रीफल और प्रमाण पत्र भेंट कर बिनय राजाराम को वर्ष 2019 और मनोज श्रीवास्तव को 2020 का राष्ट्रीय कबीर सम्मान, शिवकुमार तिवारी को 2019 और सच्चिदानंद जोशी को 2020 का राष्ट्रीय मैथिलीशरण गुप्त सम्मान, कैलाश मंडलेकर को 2019 और विजय मनोहर तिवारी को 2020 का राष्ट्रीय शरद जोशी सम्मान, जाकिया मसहदी को 2019 और प्रो. अली अहमद फातमी को 2020 का राष्ट्रीय इकबाल सम्मान तथा सत्यनारायण सत्तन को वर्ष 2021 के राष्ट्रीय कवि प्रदीप सम्मान से सम्मानित किया गया। म.प्र. के चिकित्सा शिक्षा मंत्री विश्वास सारंग, प्रमुख सचिव संस्कृति शिव शेखर शुक्ला तथा संचालक संस्कृति अदिति त्रिपाठी ने अलंकरण वितरित किये। 26 जनवरी को भोपाल के नवनिर्मित रवीन्द्र सभागम केन्द्र के लोकार्पण के साथ ही 'लोकरंग' के भव्य सांस्कृतिक समारोह में राष्ट्रीय नानाजी देशमुख सम्मान से संस्था और व्यक्तियों को भी विभूषित किया गया।

हिंदी में श्रेष्ठ व्यंग्य साहित्य के लिए राष्ट्रीय शरद जोशी सम्मान प्राप्त करते हुए कैलाश मंडलेकर
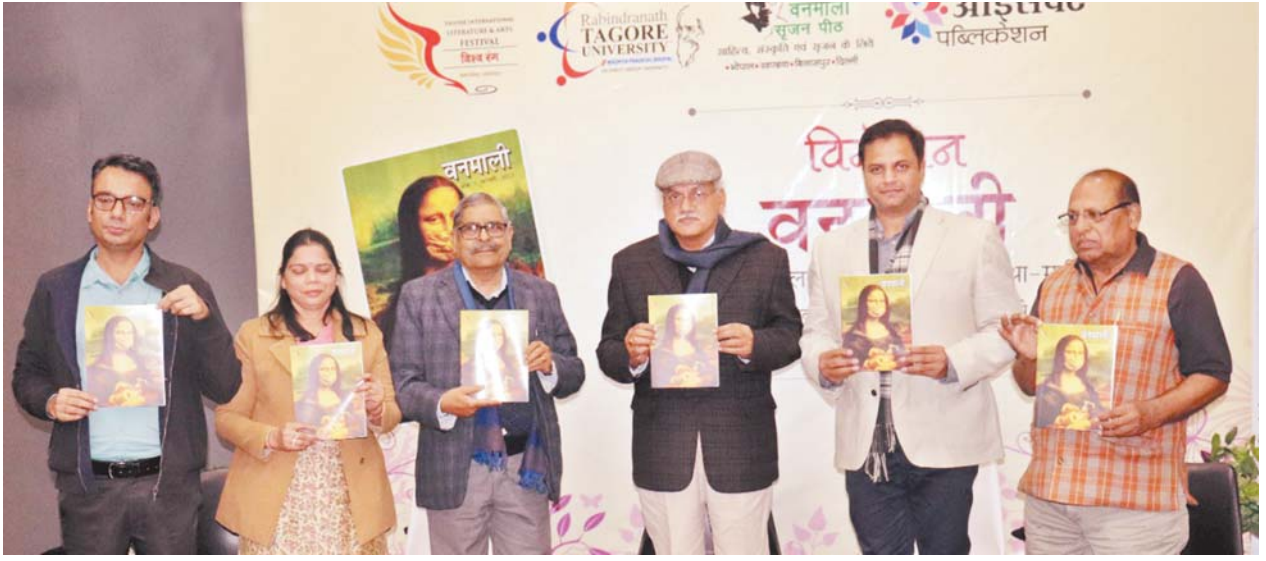
'वनमाली' लोकतांत्रिक मूल्यों की समावेशी पत्रिका

लोकतांत्रिक मूल्यों के समावेशी दृष्टिकोण के साथ उदित नई पत्रिका 'वनमाली' साहित्य, कला, संस्कृति की दुनिया में ऐतिहासिक घटना के रुप में रेखांकित की जाएगी। 'विश्व रंग' की अवधारणा के अनुरुप हिंदी और भारतीय भाषा के कथा साहित्य को स्थानीय से लेकर वैश्विक स्तर पर व्यापकता प्रदान की जाएगी। इस मंशा के साथ वरिष्ठ कवि-कथाकार एवं रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति संतोष चौबे, वनमाली सृजन पीठ के अध्यक्ष-संपादक मुकेश वर्मा, कवि बलराम गुमास्ता, आईसेक्ट समूह के युवा उद्यमी सिद्धार्थ चतुर्वेदी आदि ने मिलकर 'वनमाली' पत्रिका के प्रवेशांक का लोकार्पण किया। रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्व विद्यालय के कथा सभागार में आयोजित इस गरिमामय समारोह में भोपाल सहित दिल्ली, बिलासपुर और खंडवा के सृजनधर्मी बड़ी संख्या में उपस्थित थे। यह आयोजन 'विश्व रंग' के अंतर्गत वनमाली सृजन पीठ और आईसेक्ट पब्लिकेशन की साझा पहल पर संपन्न हुआ।

संवाद में दिल्ली से जुड़ते हुए कवि-आलोचक जितेन्द्र श्रीवास्तव ने कहा कि 'वनमाली' पत्रिका का पहला स्पर्श गहरी दृष्टि सम्पन्नता और विविधता का अहसास है। कवि एवं 'विश्व रंग' पत्रिका के संपादक लीलाधर मंडलोई ने कहा कि वनमाली जी के नाम पर मासिक कथा पत्रिका का होना साहित्य जगत में अपने अग्रज रचनाकार के प्रति आदर का सूचक है। उद्यमी सिद्धार्थ चतुर्वेदी ने इस अवसर को गौरवशाली क्षण बताया। उन्होंने उम्मीद जताई कि यह नवाचार और रचनात्मकता को पूरी महत्ता के साथ रेखांकित करेगी।

कार्यक्रम का संचालन कर रहे 'वनमाली' पत्रिका के संपादक कुणाल सिंह ने कहा कि 'वनमाली' पत्रिका मेरे लिये सपने की तरह है। यह हिंदी की पहली ऐसी पत्रिका है जिसने अपने प्रवेशांक के लोकार्पण के पहले ही अनेक सदस्य बना लिए हैं। लंदन से वरिष्ठ प्रवासी भारतीय कथाकार दिव्या माथुर ने जुड़ते हुए कहा कि 'वनमाली' पत्रिका का उदय होना साहित्य के वैश्विक पटल पर सुनहरे अक्षरों में रेखांकित किया जाएगा। बैंगलोर से युवा कथाकार चंदन पाण्डेय ने अपनी भावनाएँ साझा करते हुए कहा कि ऑनलाइन और वेब पब्लिकेशन जैसी नई चुनौतियों के बीच 'वनमाली' का प्रकाशित होना बहुत महत्वपूर्ण है। टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र के निदेशक एवं 'रंग संवाद' के संपादक विनय उपाध्याय ने अपने वक्तव्य में इस पत्रिका का संदर्भ लेते हुए संपादकीय टीम को दृष्टि सम्पन्न बताया। उन्होंने कथाकार वनमाली और उनकी साहित्य विरासत के प्रति इस अभियान को महत्वपूर्ण बताया। कथाकार शशांक और हरि भटनागर और अनुज अनंत के साथ ही खंडवा से अरुण जोशी, शरद जैन, गोविंद शर्मा, लुकमान मसूद, वीणा जैन, बिलासपुर से गौरव शुक्ला, अनु चक्रवर्ती, किशोर सिंह, योगेश मिश्रा, दिल्ली से राकी गर्ग ने भी शुभेच्छाएँ व्यक्त की। इस अवसर पर आईसेक्ट पब्लिकेशन के प्रबंधक महीप निगम भी उपस्थित थे।

अतिथियों का स्वागत टैगोर विश्वविद्यालय की प्रतिकुलपति संगीता जौहरी और पत्रिका की सह संपादक ज्योति रघुवंशी ने किया। - **संजय सिंह राठौर**

रचनात्मक प्रयासों का साझा मंच

'वनमाली' पत्रिका के संपादक मुकेश वर्मा ने कहा कि 'वनमाली' मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा को समर्पित रचनात्मक प्रयासों को बढ़ावा देने का एक महत्वपूर्ण प्लेटफार्म उपलब्ध कराएगी। इसमें वरिष्ठ से लेकर अत्यंत युवा कथाकार को भी सम्मान के साथ प्रकाशित किया गया है और हम इसे समावेशी दृष्टिकोण के साथ जारी रखेंगे। इसमें प्रवासी भारतीय रचनाकारों के साथ-साथ विदेशों में रचे जा रहे श्रेष्ठ साहित्य को भी मुक्कमल जगह दी जाती रहेगी। वर्मा ने साहित्य खेमेबाज़ी पर कटाक्ष करते हुए कहा कि 'वनमाली' इस मानसिकता से दूर रहेगी। कवि बलराम गुमास्ता ने शुभकामना देते हुए कहा कि यह पत्रिका हमारे मन और चेतना को बनाने का कार्य करेगी।

कैमरे की जद में 'तनिष्का'

'तनिष्का' फ़िल्म की यात्रा हममें से कईयों की यात्रा हो सकती है क्योंकि यह लड़कपन के उन ठहरे हुए लम्हों का लेखा-जोखा है जहाँ समय के बहुत आगे तक पहुँचने की संभावनाओं की दस्तकें सुनीं जा सकती हैं। बस, इसी ज़मीन पर दस बरस की नृत्यांगना तनिष्का की प्रतिभा को कैमरे की जद में जज़्ब करने का सिलसिला चल पड़ा। भोपाल की इस उदीयमान कलाकार की चहक-महक भरी अनेक छवियाँ दर्शकों की आँख और मन पर चस्पा हैं लेकिन चित्रपट के लिए उसे इस तरह अंकित कर लेने फितरत युवा फ़िल्मकार और लेखक सुदीप सोहनी पर कुछ इस तरह तारी रही कि एक कलात्मक रुपक अपने अनूठेपन में खिल उठा है।

अपना तजुरबा साझा करते हुए सुदीप बताते हैं कि सिनेमा या कला से मेरा जुड़ना इत्तिफ़ाक़ नहीं था लेकिन उम्र के एक मोड़ पर यह तय करना कि आगे जीवन को उसी तरह से देखना है, यह आसान नहीं था। मैं आज भी बार-बार अपने बचपन में जाता हूँ और सोचता हूँ- 'अरे मैं तब ऐसा कर लेता' या 'काश कोई मुझे उस रास्ते मोड़ देता'। मैं जो कुछ भी कर पा रहा हूँ उसमें बाल-अवचेतन की ही कई सारी चीज़ें मौजूद हैं। ऐसे में तनिष्का को देखा, तो लगा कि इस लड़की के भीतर इस उम्र में क्या चल रहा होगा? जब वो सीख रही या परफॉर्म कर रही? जब वो स्टेज पर नहीं भी होती तो क्या सोचती रहती है? तनिष्का अपने आगे के जीवन में क्या करेगी- यह मुझे नहीं मालूम। लेकिन उसका आज किसी तरह बचा लेना मुझे ज़रुरी लगा। यह एक 'कलाकार और उसके बचपन' की यात्रा को बचा लेने जैसा है। कोशिश यही है कि उसकी सीख, उसकी ज़िद, उसका समर्पण इस फिल्म में दिखाई दे।

सुदीप इस बीच जोड़ते हैं कि इसके लिए हमने केवल उसके साथ समय बिताया। कोई स्क्रिप्ट नहीं। हाँ, थोड़ा बहुत ज़रुर सोचा कि क्या होना चाहिए। कोई डायलॉग उसे नहीं दिया। सब कुछ त्वरित। महेश्वर, केरल और भोपाल के अलावा तनिष्का के साथ रेल-बस यात्राओं, मंच व प्रदर्शन पूर्व सीखने और उसके जीवन के दृश्य इस फ़िल्म में हैं। यह एक धीमी नॉन-लीनियर कथानक वाली प्रयोगधर्मी डॉक्यूमेंट्री फ़िल्म है जिसमें नाटकीयता सहित आम-प्रचलित तकनीक मसलन साक्षात्कार, पार्श्व विवरण भाष्य आदि नहीं है। इस पूरे ताने-बाने में साथ रहे संजू सुरेन्द्रन, अशोक मीना, अनिरुद्ध चौथमोल, धीरज चेतिया, दीपक बिशनोई, हीरा धुर्वे, वैभव सावंत, आदित्य उपाध्याय और तनिष्का के माँ-पिता मंजू मणि और विशाल हतवलने।

जाते साल 2021 में जब 'तनिष्का' का ट्रेलर लॉन्च होना था। उसी बीच एक ख़बर यह मिली कि केंद्रीय फ़िल्म प्रमाण न बोर्ड (CBFC) ने फ़िल्म को U श्रेणी का प्रमाण पत्र जारी कर दिया। प्रमाण पत्र पर फ़िल्म 67 मिनट और 42 सेकंड की है। यानि 1 घंटा और 7 मिनट। - **विभोर**

भारतबोध के प्रखर प्रवक्ता थे उपाध्याय

दीनदयाल उपाध्याय भारतबोध के प्रखर प्रवक्ता थे। वे ऐसे राजनीतिक विचारक थे, जिन्होंने भारत को समझा और उसकी समस्याओं के हल तलाशने के प्रयास किए। लेखन और जीवन भारतबोध को प्रकट करता है।

ये विचार भारतीय जन संचार संस्थान के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी ने व्यक्त किये। द्विवेदी पं. दीनदयाल उपाध्याय की पुण्यतिथि के अवसर पर हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला द्वारा आयोजित सात दिवसीय कार्यक्रम 'दीनदयाल प्रसंग' के शुभारंभ समारोह को संबोधित कर रहे थे। उन्होंने कहा कि दीनदयालजी का मानना था कि विदेशों से ली गई विचार प्रणालियों में हमारे राष्ट्र की सभ्यता एवं संस्कृति प्रकट नहीं हो सकती है। इसलिए राष्ट्रमानस को छूने में वे असफल रही हैं। उनके विचारों में हमेशा राष्ट्रप्रेम और भारतीय जनमानस की समृद्धि की भावना प्रमुख रही है।

दीनदयाल उपाध्याय का भारत बोध विषय पर एकाग्र होकर संजय ने उनके एकात्म मानव दर्शन का उल्लेख किया। इस प्रवाह में उन्होंने जोड़ा कि समाज की अंतिम सीढ़ी पर खड़ा व्यक्ति भी सब के साथ खड़ा हो सके तभी देश का समान आर्थिक विकास संभव है। प्रत्येक व्यक्ति को काम का अधिकार मिले, इस आर्थिक प्रजातंत्र के दीनदयालजी हमेशा ही हिमायती रहे।

कार्यक्रम का संचालन जयप्रकाश सिंह ने किया। स्वागत भाषण पं. दीनदयाल उपाध्याय पीठ के अध्यक्ष अरुण कुमार ने दिया। आभार मलकीत सिंह ने माना।

परंपरा का पुनर्पाठ ज़रुरी

'इतिहास व संचार की भारतीय संस्कृति'

''राष्ट्र निर्माण में शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आज अतीत को पढ़ना, वर्तमान गढ़ना और भविष्य की चौखट पर भारतीय परंपराओं को पुनः स्थापित करने की आवश्यकता है। यह काम शिक्षकों से अच्छा कोई नहीं कर सकता।'' संस्कृति, पर्यटन और अध्यात्म मंत्री उषा ठाकुर ने ये उद्‌गार रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल में 'इतिहास व संचार की भारतीय संस्कृति' पुस्तक विमोचन करते हुए व्यक्त किये।

इस अवसर पर उन्हें विश्वविद्यालय की ओर से कथादेश, कथा मध्यप्रदेश, रंग संवाद, वनमाली पत्रिका और अन्य प्रकाशन भेंट स्वरुप प्रदान किए गए। मुख्य वक्ता मनोज श्रीवास्तव, पूर्व अपर मुख्य सचिव ने कहा कि यह विडंबना है कि हमें जो इतिहास की संरचना दी गई है उसमें हमने इतिहास को व्यक्ति और वंशों तक सीमित कर दिया। हमारी आरण्यक संस्कृति ऋषि, पशु और समुदाय के सहअस्तित्व की संस्कृति थी। भारतीय ज्ञान परंपराओं की विशिष्टओं को जानना जरुरी है। उन्होंने कहा कि हमारे यहाँ इतिहास को सुरक्षित रखने की वैज्ञानिक परंपरा थी। रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति संतोष चौबे ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में कहा कि चित्रकला, मूर्तिकला, कथाएँ और कविताएँ संचार की पद्धतियाँ हैं। भारतीय संचार परंपराओं के माध्यम से बड़ा विस्तार हुआ है। हमें अपनी परंपराओं और इतिहास को पहचानना है। हमें समग्रता के स्वरुप को अपनाते हुए सारे इतिहास को सही करने का काम करना है। शिक्षाविद प्रो. अमिताभ सक्सेना ने कहा कि यह भ्रांति फैलाई गई कि भारत में इतिहास लिखने की परंपरा नहीं थी, सिर्फ श्रुति आधारित इतिहास लिखा गया। उन्होंने धर्मपाल जी के कथन का उल्लेख करते हुए कहा कि किसी भी स्थापित मान्यता को नष्ट करने के लिये उसी मान्यता का सहारा लिया जाता है। स्वागत वक्तव्य कुलपति डॉ. ब्रह्म प्रकाश पेठिया ने दिया। विश्वविद्यालय के प्रति कुलाधिपति सिद्धार्थ चतुर्वेदी ने इस मौके पर बताया कि विश्वविद्यालय गंभीर एवं महत्वपूर्ण विषयों पर सार्थक कार्यक्रमों का आयोजन राज्य, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लगातार करता आ रहा है। विश्वरंग इस दिशा में हमारे विश्वविद्यालय की सार्थक पहल है।

युवा आलोचक अरुण शुक्ला ने विषय प्रवर्तन किया। संचालन प्रतिकुलपति संगीता जौहरी ने किया। कार्यक्रम की संयोजक सावित्री सिंह परिहार रही।

डॉ. बिल्लौरे को सम्मान

सामाजिक-सांस्कृतिक संस्था मिलन भोपाल द्वारा साहित्य, कला और संस्कृति के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए प्रदान किया जाने वाले स्वर्गीय कृष्णाराव पगारे स्मृति सम्मान के लिए डॉक्टर श्याम बिल्लोरे का चयन किया गया है। पुरस्कार स्वरुप दस हज़ार रुपए राशि के साथ प्रशस्ति पत्र और शॉल-श्रीफल की भेंट का प्रावधान है। प्रसंगवश यह ग़ौरतलब है कि मध्यप्रदेश के शैक्षिक जगत में अपनी यशस्वी प्राध्यापकीय सेवाएँ देने वाले बिल्लौरे साहित्य और संस्कृति से गहरा अनुराग रखने वाले परिवार के उत्तराधिकारी के रुप में अपना शालीन व्यक्तित्व रखते हैं। उन्होंने अपने समय में आदर्श छात्र पीढ़ियों को तैयार किया। पुरस्कार संयोजक श्रीकांत खेड़े के अनुसार संस्था द्वारा हर साल शिक्षा और खेलकूद के क्षेत्र में प्रतिभावान छात्र-छात्राओं को भी सम्मानित किया जाता है। जनार्दन नेगी स्मृति विज्ञान पुरस्कार तथा श्रीमती शारदा मुजमेर स्मृति पुरस्कार भी इस श्रृंखला में शामिल है, जिसमें दस-दस हज़ार रुपए की राशि तथा प्रमाण पत्र प्रदान किए जाते हैं।

हारा वही, जो लड़ा नहीं

दिव्यांगों के जीवन के कई पहलुओं से हम अनजान रहते हैं क्योंकि एक अनकहा शून्य उनके और सामान्य जन के बीच पसरा रहता है। साहित्य इस फ़ासले को पाट सकता है। साहित्य में दिव्यांग विमर्श बढ़े और उसके माध्यम से दिव्यांगों के प्रति संचेतना बढ़े इसी मंशा से मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी ने ''हारा वही, जो लड़ा नहीं'' का आयोजन भोपाल के म.प्र जनजातीय संग्रहालय में किया। साहित्य की रचनाशीलता का एक खुला लोकतंत्र इस आयोजन में उद्घाटित हुआ। एक तरह से यह आयोजन इस बात को भी जाँचने का अवसर था कि साहित्य की मुख्यधारा में अनदेखे रचनाकार किस तरह अपनी प्रतिभा और आंतरिक जिजीविषा से अपना सातत्य बनाए हुए है। साहित्य की सबसे बड़ी ऑनलाइन लाइब्रेरी कविता कोष और गद्य कोष की स्थापना करने वाले ललित कुमार, सुप्रसिद्ध स्टेंड अप कॉमेडियन एवं मिमिक्री आर्टिस्ट अभय कुमार शर्मा, संचालक, संस्कृति अदिति कुमार त्रिपाठी और अकादेमी के निदेशक विकास दवे सहित साहित्यप्रेमी उपस्थित थे। नेत्रबाधित कवियों का कवि सम्मेलन भी हुआ। संचालन संस्कृतिकर्मी आलोक बाजपेयी ने किया।

रंगमंच अगर अवाम की आवाज़ों का आज़ाद कारवाँ है तो यहाँ मुख्तलिफ़ कहानियाँ और क़िरदार अपनी ज़ुबानी वक़्त और हालातों को पुकार सकते हैं। शहीद भवन की रंगशाला में एक ऐसी ही पुरअसर आवाज़ अपने वक़्ती दौर के एक जांबाज़ वतनपरस्त की शौर्य गाथा सुनाती रही। कथानक, अभिनय, संगीत और संवाद का सुथरा ताना-बाना लिए दर्शकों से मुख़ातिब थे प्रवीण चौबे। वे अपनी सरज़मी पश्चिम निमाड़ के उस पराक्रमी वनवासी सेनानी की कथा सुनाने पेश आये जिसे जनपदीय अतीत टंट्या मामा के नाम से पुकारता रहा। गोरों की हुकूमत के ख़िलाफ अपनी आवाज़ बुलंद करने वाले इस जन नायक के अनेक जाने-अनजाने पहलुओं को लयबद्ध सिलसिला देते हुए प्रवीण ने अपनी निखरी हुई रंग प्रतिभा को जिस आत्मविश्वास से उजागर किया, वह उनकी लगभग ढाई दशकों की साधना और प्रतिबद्धता का हासिल है। टंट्या की गाथा कहते वे अकेले अनेक संदर्भित चरित्रों को कई दृश्यांतरों में जीते हैं। यहाँ मंच के फ़लक पर आवाजाही की सुगठित संरचनाएँ भी हैं। लगभग एक घंटे की प्रस्तुति में वे टंट्या भील के जीवन की उन तमाम घटनाओं-प्रसंगों और मानवीय संवेगों का वितान रचते है जहाँ स्वाधीनता के रणबाँकुरे की विद्रोही छवि के साथ ही उसके सामाजिक पारिवारिक और निजी अंतरंग खुलासा होता है। प्रवीण ये सुविधा देते हैं कि टंट्या को जानने के लिए मोटी क़िताबों की दरकार नहीं है, बस उनकी यह प्रस्तुति ही पर्याप्त है।

निश्चय ही यह माद्दा, मेहनत मांगता है जिसके लिए प्रवीण का उत्साह परवान चढ़ता रहा। लोक संस्कृतिकर्मी वसंत निरगुणे के नाट्य आलेख का आधार लेते हुए प्रवीण ने अपनी कल्पना के दृश्य और कुछ गीत उसमें जोड़े हैं। जनश्रुतियों का सहारा भी लिया। दिलचस्प पहलू यह कि प्रवीण ने इस रंग अभिव्यक्ति के लिए निमाड़ी को चुना। मध्यप्रदेश की इस लोक बोली में वे धाराप्रवाह दर्शकों से संबोधित होते हैं। स्वाभाविक ही निमाड़ की आंचलिक संस्कृति और लोकाचार भी इसमें झांकता है। निश्चय ही प्रवीण चौबे निमाड़ की रंग विरासत को नया उन्मेष प्रदान करने वाले उत्तराधिकारी हैं।

निमाड़ लोक कला संस्कृति केन्द्र, डॉ. सी.वी. रामन् विश्व विद्यालय खंडवा द्वारा काठी महोत्सव का आयोजन किया गया। इस अवसर पर काठी की परंपरागत नृत्य प्रस्तुति को लोक कलाकारों की अनुष्ठानित भाव-भंगिमाओं और लय-गतियों में देखना रसिकों के लिए दिव्य अनुभव रहा।

जीवन की आनंदित लय-ताल पर थिरकती आस्थाएँ प्रार्थना के गहरे रंगों में डूबकर जब आदिशक्ति की पुकार बन जाती है तो निमाड़ की मधुमय संस्कृति में भक्ति का यह भाव काठी की मूरत में बदल जाता है। ढाँक और थाली से उठते नाद की इन स्वर लहरियों पर जैसे जीवन का कोई राग अंगड़ाई लेता है और लोक इन तरंगों पर नाच उठता है। यूँ एक अक्षय परंपरा मंगल की कामना के साथ निमाड़ के पश्चिम और पूरब में बसे समुदाय की अनमोल विरासत बन जाती है।

महादेव शिव को अपना आराध्य मानने वाले हरिजन भगतों का यह समूह पुराग की किसी स्मृति को गीत-संगीत, नृत्य और अभिनय में पुकारता, भक्ति में तल्लीन हो जाता है। काठी को देखना भक्ति के रुहानी रंग को महसूस करना है। काठी, दरअसल मातृशक्ति पार्वती की पूजा का पर्व है। देवप्रवोधिनी एकादशी से शिवरात्रि तक थाली की झंकार और ढाँक की गुंजार के बीच भगतों का रेला गाँव-गाँव ठुमकता दस्तक देता है। साहित्य-संस्कृति के अध्येता श्रीराम परिहार ने काठी के इस उत्सवी प्रसंग का समन्वयय किया।

काठी उत्सव

भारतीय भाषा उत्सव

रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्व विद्यालय, भोपाल का अनुवाद केन्द्र अनुवाद की संस्कृति के विकास व प्रसार हेतु लगातार व्याख्यान, कार्यशाला आदि का आयोजन करता रहता है। इसी क्रम में केन्द्र द्वारा 10 मार्च को 'भारतीय भाषा उत्सव' का आयोजन किया गया। विभिन्न भारतीय भाषाओं के अनुवादकों ने इस अवसर पर अपनी भाषा में रचना पाठ किया उसके उपरांत उसका हिन्दी अनुवाद भी श्रोताओं के बीच प्रस्तुत किया।

इस वृहद समागम में जगदीश परमार (गुजरती), चंद्रकांत भोंजाल (मराठी), वी.जी. गोपालकृष्णन (मलयालम), सुश्री लिपिका साह (बांग्ला), प्रवासिनी महाकुंद (उडीया), जानकी प्रसाद शर्मा (उर्दू), बलराम गुमास्ता, लीलाधर मंडलोई, राकी गर्ग (हिन्दी) ने सहभागिता की। राकी गर्ग ने अंग्रेज़ी से हिन्दी अनुवाद कर सुनाया तो लीलाधर मंडलोई ने गुजराती कविता का हिन्दी अनुवाद कर सुनाया। बलराम गुमास्ता की कविता के अंग्रेज़ी अनुवाद का पाठ संगीता जौहरी ने किया। गुमास्ता ने अपनी कविताओं का पाठ हिन्दी में किया। अुनवादकों ने के. सच्चिदानंदन, सीताकांत महापात्र, दिलीप चित्रे आदि रचनाकारों की मूल रचना व उनका हिंदी अनुवाद प्रस्तुत किया जिसे श्रोताओं ने सराहा। जानकी प्रसाद शर्मा ने फैज़ल निदा फाज़ली तथा मीर की नज़्में व शायरी सुना कर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। अध्यक्षता विश्वविद्यालय के कुलाधिपति संतोष चौबे ने की। उन्होंने अपने द्वारा हिन्दी में अनुदित ई.एफ. शूमाकर की पुस्तक 'भ्रमित आदमी के लिए एक किताब' से कुछ चुनिंदा अंशों का पाठ भी किया। उन्होंने इस बात के लिए आश्वस्त किया कि अनुवाद केन्द्र के माध्यम से इस तरह के आयोजन लगातार किये जाते रहेंगे। अतिथि रचनाकारों का औपचारिक स्वागत संगीता जौहरी (प्रति कुलपति) तथा धन्यवाद ज्ञापन उषा वैद्य ने किया। कार्यक्रम का संचालन करते हुए अनुवाद केन्द्र के संयोजक युवा आलोचक अरुणेश शुक्ल ने केन्द्र की भविष्य दृष्टि, योजनाओं व उद्देश्यों के बारे में विस्तार से प्रकाश डाला।

उल्लेखनीय है कि हिन्दी को ज्ञान की भाषा बनाने तथा अन्य भारतीय व विश्व भाषाओं तथा बोलियों के साथ आपसी आवाजाही को बढ़ाने हेतु रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्व विद्यालय ने अनुवाद शोध केन्द्र की स्थापना की है। यह केन्द्र हिंदी को अनुवाद के माध्यम से वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठित करने का कार्य कर रहा है।

अभिनव शब्द शिल्पी हुए सम्मानित

साहित्य और कला की मानक संस्था अभिनव कला परिषद ने 'उत्सव गणतंत्र' का आयोजन करते हुए विभिन्न विधाओं में सक्रिय वरिष्ठ और युवा रचनाकारों को अभिनव शब्द शिल्पी सम्मान से विभूषित किया। भोपाल के मानस भवन में ये सम्मान हिंदी के अग्रणी कथाकार-कवि संतोष चौबे और सांसद रघुनंदन शर्मा ने भेंट किए। सम्मानित सृजनधर्मियों में विनोद नागर, गोकुल सोनी, घनश्याम मैथिल, मोहन सगोरिया, दीपक पगारे, प्रीति खरे आदि शामिल थे। वनमाली सृजन पीठ भोपाल इकाई के अध्यक्ष मुकेश वर्मा तथा मध्यप्रदेश लेखक संघ के अध्यक्ष रामवल्लभ आचार्य, अभिनव कला परिषद के सचिव सुरेश तांतेड़ विशेष रुप से उपस्थित थे। कार्यक्रम का संचालन बद्र वास्ती ने किया।

‘वनमाली कथा सम्मानों’ की घोषणा

सुप्रतिष्ठित कथाकार, शिक्षाविद् तथा विचारक स्वर्गीय जगन्नाथ प्रसाद चौबे ‘वनमाली’ के रचनात्मक योगदान और स्मृति को समर्पित ‘वनमाली सृजन पीठ’ के राष्ट्रीय अध्यक्ष वरिष्ठ संतोष चौबे ने विश्व हिंदी दिवस पर प्रतिष्ठित राष्ट्रीय वनमाली कथा सम्मानों की घोषणा की। ‘विश्वरंग’ के अंतर्गत रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के तत्वावधान में वनमाली सृजन पीठ एवं आईसेक्ट पब्लिकेशन द्वारा आयोजित तीन दिवसीय वनमाली कथा सम्मान समारोह में सभी चयनित रचनाकारों को सम्मानित किया जाएगा।

प्रथम ‘वनमाली कथाशीर्ष सम्मान’ से अग्रणी समालोचक प्रोफेसर धनंजय वर्मा (उज्जैन) को अलंकृत किया जाएगा जबकि ‘वनमाली राष्ट्रीय कथा सम्मान’ से वरिष्ठ कथाकार गीतांजलि श्री (दिल्ली) को सम्मानित किया जायेगा। दोनों साहित्यकारों को शॉल श्रीफल, प्रशस्ति पत्र एवं एक-एक लाख रुपये सम्मान राशि प्रदान कर अलंकृत किया जाएगा। श्री चौबे के अनुसार ‘वनमाली कथा मध्यप्रदेश’ सम्मान वरिष्ठ कथाकार हरि भटनागर (भोपाल), ‘वनमाली युवा कथा सम्मान’ युवा कथाकार चंदन पांडेय, (बंगलौर), ‘वनमाली कथा आलोचना सम्मान’ युवा आलोचक वैभव सिंह (दिल्ली), ‘वनमाली साहित्यिक पत्रिका सम्मान’ दिल्ली से प्रकाशित चर्चित मासिक पत्रिका ‘कथादेश’ को प्रदान किये जायेंगे।

उल्लेखनीय है कि वनमाली कथा सम्मान में इस बार से वनमाली कथाशीर्ष सम्मान के साथ ही दो और श्रेणियों में रचनाकारों को सम्मानित किया जाएगा। पहला ‘वनमाली प्रवासी भारतीय कथा सम्मान’ वरिष्ठ कथाकार दिव्या माथुर (लंदन) को प्रदान किया जायेगा तथा पहला ‘वनमाली विज्ञान कथा सम्मान’ वरिष्ठ विज्ञान लेखक देवेंद्र मेवाड़ी (दिल्ली) को प्रदान किया जाएगा। इन सभी रचनाकारों को शॉल-श्रीफल, प्रशस्ति-पत्र और इक्यावन हजार रुपये सम्मान राशि प्रदान कर अलंकृत किया जाएगा। वनमाली सृजन पीठ, भोपाल इकाई के अध्यक्ष मुकेश वर्मा ने जानकारी देते हुए बताया कि ‘विश्वरंग’ के अंतर्गत वनमाली सृजन पीठ द्वारा प्रदान किए जाने वाले ये सम्मान समकालीन कथा परिदृश्य में जनतांत्रिक एवं मानवीय मूल्यों की तलाश में लगे कथा साहित्य की पुनः प्रतिष्ठा करने एवं उसे समुचित सम्मान प्रदान करने के उद्देश्य से स्थापित द्विवार्षिक पुरस्कार है।

पत्रिका ‘वनमाली’ : इस अवसर पर एक नये कथा मासिक ‘वनमाली’ की शुरुआत की जा रही है। वनमाली सृजन पीठ की इस पत्रिका के प्रधान संपादक मुकेश वर्मा तथा संपादक कुणाल सिंह होंगे। पत्रिका का पहला अंक वनमाली कथा सम्मान समारोह में लोकार्पित किया जाएगा।

कथा भोपाल : आईसेक्ट पब्लिकेशन द्वारा भोपाल के लगभग 200 कथाकारों की कहानियों को ‘कथा भोपाल’ के रुप में चार वृहद खंडों में संकलित, संपादित एवं प्रकाशित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस अद्वितीय कथाकोश के प्रधान संपादक संतोष चौबे तथा संपादक मुकेश वर्मा हैं। समारोह में इस कथाकोश का लोकार्पण भी किया जाएगा। आईसेक्ट पब्लिकेशन द्वारा प्रकाशित सात अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकें भी जारी की जायेंगी।

परंपरानुसार सम्मानित रचनाकारों का रचना पाठ होगा। वनमालीजी की कहानी ‘आदमी और कुत्ता’ का मंचन मनोज नायर के निर्देशन में टैगोर नाट्य विद्यालय के छात्र कलाकार करेंगे जबकि संतोष चौबे की कहानी ‘सतह पर तैरती उदासी’ का नाट्य मंचन नाट्य निर्देशक देवेंद्र राज अंकुर के निर्देशन होगा।

धनंजय वर्मा, देवेंद्र मेवाड़ी, गीतांजलि श्री, हरि भटनागर, चंदन पांडेय, वैभव सिंह

सांस्कृतिक सरोकारों और समकालीन कला चेतना का

जीवंत दस्तावेज़

संपादकीय संपर्कः

टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र

ऋतुरंग प्रकोष्ठ

रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्व विद्यालय

ग्राम मेंदुआ, पोस्ट-भोजपुर, बंगरसिया चौराहा के पास,

भोपाल-चिकलोद रोड, रायसेन-464993

मो. 9826392428 फोन नं. 0755-2423806

ई-मेल : choubey@aisect.org • vinay.srujan@gmail.com

अंतरंग

लबो–लहजे और अदाकारी के मुख़्तलिफ़ रंग

संवाद और अभिनय की नई रंग ऊर्जा

जब दृष्टि में बदल जाता है देखना

मातृत्व की धन्यता से भरे शिल्प

हरित बाँस की बाँसुरी

छंद डोर में स्वर माला सी

उम्मीदों के नए रंग–बादल

रुह में इबादत की तरह

यह डाल वसन वासंती

लय के अवतार

बेमिसाल बानो